गायत्री
की
युगांतरीय चेतना

श्रीराम शर्मा आचार्य

युग शक्ति के रूप में गायत्री चेतना का अरुणोदय

यों मनुष्य के पास प्रत्यक्ष सामर्थ्यों की कमी नहीं है और उनका सदुपयोग करके वह अपने तथा दूसरों के लिए बहुत कुछ करता है, किन्तु उसकी असीम सामर्थ्य को देखना हो तो मानवी चेतना के अन्तराल में प्रवेश करना होगा । व्यक्ति की महिमा को बाहर भी देखा जा सकता है, पर गरिमा का पता लगाना हो तो अन्तरंग ही टटोलना पड़ेगा । इस अन्तरंग को समझने, उसे परिष्कृत एवं समर्थ बनाने, जागृत अन्तःक्षमता का सदुपयोग कर सकने के विज्ञान को ही ब्रह्मविद्या कहते हैं । ब्रह्मविद्या के विशाल कलेवर का बीज–सूत्र गायत्री को समझा जा सकता है । प्रकारान्तर से गायत्री को मानवी गरिमा के अन्तराल में प्रवेश पा सकने वाली और वहाँ जो रहस्यमय है उसे प्रत्यक्ष में उखाड़ लाने की सामर्थ्य को गायत्री कह सकते हैं । नवयुग के सृजन में सर्वोपरि उपयोग इसी दिव्य शक्ति का होगा ।

मनुष्य की बहिरंग सत्ता को भी कई तरह की सामर्थ्य प्राप्त है, पर वे सभी सीमित होती हैं और अस्थिर भी । सामान्यतया सम्पत्ति, बलिष्ठता, शिक्षा, प्रतिभा, पदवी, अधिकार जैसे साधन ही वैभव में गिने जाते हैं और इन्हीं के सहारे कई तरह की सफलताएँ भी सम्पादित की जाती हैं । इतने पर भी इनका परिणाम सीमित ही रहता है और इसके सहारे व्यक्तिगत वैभव सीमित मात्रा में ही उपलब्ध किया जा सकता है । भौतिक सफलताएँ मात्र अपने पुरुषार्थ और साधनों के सहारे ही नहीं मिल जातीं वरन् उनके लिए दूसरों की सहायता और परिस्थितियों की अनुकूलता पर भी निर्भर रहना पड़ता है । यदि बाहरी अवरोध उठ खड़े हों, परिस्थितियाँ प्रतिकूलता की दिशा में उलट पड़ें तो साधन और कौशल अपंग बनकर रह जाते हैं और असफलता का मुँह देखना पड़ता है । आत्मशक्ति के साथ जुड़ा हुआ वर्चस् भौतिक साधनों की तुलना में अत्यधिक होना सुनिश्चित है, उसमें न तो असीमता का बन्धन है न ही स्वल्पता का असन्तोष । उस क्षेत्र में प्रचुरता असीम है । आत्मा का

सम्बन्ध सूत्र परमात्मा के साथ जुड़ा होने के कारण आवश्यकतानुसार उस स्रोत से बहुत कुछ, सब कुछ प्राप्त किया जा सकता है ।

कुएँ में सीमित पानी भरा रहता है, पर खींचने पर जो कमी पड़ती है उसे भूमिगत जलस्रोत सहज ही पूरी करते रहते हैं । चिनगारी छोटी होती है, पर ईंधन जैसे साधन मिलते ही उसे दावानल का विकराल रूप धारण करने में देर नहीं लगती । व्यापक अग्नि तत्वों का सहयोग मिलने का ही चमत्कार है । नदी की धारा सीमित होती है, उसमें थोड़ा-सा जल बहता है, पर हिमालय जैसे विशाल जलस्रोत के साथ तारतम्य जुड़ा होने के कारण वह अविच्छिन्न रूप से प्रवाहित ही बनी रहती है, जबकि पोखर का पानी अपने तक ही सीमित रहने के कारण उपयोग कर्त्ताओं का, धूप-हवा का दबाव सह नहीं पाता और जल्दी ही सूखकर समाप्त हो जाता है । भौतिक सामर्थ्य की तुलना पोखर के पानी से की जा सकती है और आत्मिक शक्तियों को हिमालय से निकलने वाली नदियों के समतुल्य समझा जा सकता है ।

भौतिक पदार्थ परिवर्तनशील हैं । इस जगत का सारा क्रम ही उतार-चढ़ाव के गतिचक्र पर परिभ्रमण करता है । यहाँ अणु से लेकर सूर्य तक सभी गतिशील हैं, वे चलते, बढ़ते और बदलते हैं । स्थिरता दीखती भर है, वस्तुतः है नहीं । पदार्थ का स्वभाव ही परिवर्तन है । जन्म और मरण से कोई बच नहीं सकता । इसी प्रकार स्थिरता के लिए भी कहीं कोई गुञ्जायश नहीं है । शरीर शैशव से यौवन तक बढ़ता तो है पर वृद्धता और मरण भी उतने ही सुनिश्चित हैं । शिक्षा और अनुभव के सहारे बुद्धि-वैभव बढ़ता है, परन्तु यह भी निश्चित है कि आयु आधिक्य के साथ-साथ स्मरण शक्ति से लेकर कल्पना और निर्णय के काम आने वाले बुद्धि संस्थान के सभी घटक अशक्त होते चले जाते हैं । एक समय ऐसा आता है जब एक समय का बुद्धिमान दूसरे समय गतिहीन माना जाता है और 'सठियाने' से तिरस्कार का भाजन बनता है । वृद्धावस्था की आवश्यकता और रुग्णता से तो सभी परिचित हैं । बुद्धिबल की तरह इन्द्रियबल भी ढलान के दिन आने पर क्रमशः घटता ही चला जाता है । विभूतियाँ दुर्बल का साथ छोड़ देती हैं, तब पदाधिकार को हस्तगत किये रहना तो दूर गृहपति का पद भी नाम मात्र के लिए ही रह जाता है ।

परिवार का संचालन कमाऊ लोगों के हाथ में चला जाता है । किसी समय का गृहपति इन परिस्थितियों में मूकदर्शक और कुछ करने बदलने में अपने को असहाय ही अनुभव करता है । राजनैतिक क्षेत्र में बूढ़े नेताओं को हटाने का जो आन्दोलन चल रहा है उसके पीछे यह अशक्तता के तत्व ही काम करते दिखाई पड़ते हैं ।

साधनों का भी यही हाल है । धन उपार्जन से मिलने वाली सफलताएँ बढ़े हुए खर्च के छेद से होकर टपकती रहती है और संग्रह का भण्डार अपूर्ण ही बना रहता है, फिर उपार्जन की कमी एवं खर्च की वृद्धि के असंतुलन भी आते रहते हैं । न तो अमीरी स्थिर है न गरीबी । ऐसी दशा में धन के आधार पर बनने वाली योजनाएँ भी अस्त-व्यस्त बनी रहती हैं । अर्थ साधनों के उपयोग कर्त्ता यदि प्रमादी या दुर्बुद्धिग्रस्त हुए तो सम्पत्ति का दुरुपयोग होता है और उससे उलट कर विग्रह-संकट ही उठ खड़ा होता है ।

प्रत्यक्ष सब कुछ दीखने वाले भौतिक साधनों की समीपता, अस्थिरता, अनिश्चितता को देखते हुए उनके द्वारा जो सफलताएँ मिलती हैं उन्हें भाग्योदय जैसी आकस्मिकता ही माना जाता है । सांसारिक सफलताओं तक के सम्बन्ध में उनके सहारे अभीष्ट मनोरथ पूरा हो सकने की आशा भर लगाई जा सकती है । विश्वास नहीं किया जा सकता । जब सामान्य प्रयोजनों तक के सम्बन्ध में इतना असमंजस है तो युग परिवर्तन जैसे कल्पनातीत विस्तार वाले, असीम शक्ति-साधनों की आवश्यकता वाले महान कार्य को उस आधार पर कैसे सम्पन्न किया जा सकता है । इतिहास साक्षी है कि हर दृष्टि से समर्थ समझी जाने वाली सत्ताएँ अपने सम्प्रदाय को व्यापक बनाने जैसा छोटा मनोरथ पूरा न कर सकीं ।

इस्लाम और क्रिश्चियेनिटी के विस्तार के लिए आतुर सत्ताधारी हर सम्भव उपाय अपनाने पर भी बहुत थोड़ी सफलता पा सके है । ऐसी दशा में यह सोचना हास्यास्पद ही होगा कि भौतिक साधनों के बलबूते शालीनता का विश्वव्यापी वातावरण बनाया जा सकना शक्य है । अधिनायक'-वादियों ने अपने देशों की समूची शक्ति सामर्थ्य मुट्ठी में करके परिवर्तन के जो सपने देखे थे, उनकी आंशिक पूर्ति भी नहीं हो पाई है । जर्मनी, इटली, रूस, चीन आदि में साधनों के आधार पर

परिवर्तन के प्रयोग बड़े पैमाने पर हुए हैं । उचित से लेकर अनुचित तक सब कुछ उस महत्वाकांक्षा के लिए बरता गया है । पर्यवेक्षक जानते हैं कि इन प्रयत्नों में कितनी सफलता मिली । जो मिली वह कितनी देर ठहर सकी । जो ठहरी हुई है वह कितने समय टिक सकेगी और प्रयोजनों का मनोरथ कितना पूरा कर सकेगी इसमें अभी भी पूरा-पूरा सन्देह है ।

भौतिक प्रगति के लिए जो प्रयत्न और प्रयोग चलते रहते हैं, जो सरंजाम खड़े होते हैं उनमें प्रचुर परिमाण में शक्ति लगानी पड़ी । उद्योग, व्यवसाय, शिक्षा, चिकित्सा, शांति, सुरक्षा, धर्म-धारणा जैसे कार्यों में कितनी साधन-शक्ति लगती है उसका परिमाण और विस्तार देखते हुए हतप्रभ रह जाना पड़ता है । इतने पर भी शान्ति और प्रगति की समस्या का आंशिक हल ही हो पाता है । साधनों के अभाव का असमंजस सदा ही बना रहता है । योजनाएँ स्थगित होती रहती हैं । जब बाह्य सुविधा संवर्धन का उद्देश्य प्रस्तुत शक्ति-साधनों के सहारे पूरा होने में इतनी कठिनाई है तो जनमानस का परिष्कार और वातावरण के परिवर्तन जैसा विशाल कार्य इतने भर से किस प्रकार पूरा हो सकेगा ? यह ठीक है कि नवनिर्माण के लिए भौतिक साधनों की भी आवश्यकता है और उन्हें जुटाने के लिए सामर्थ्य भर प्रयत्न करने होंगे, पर उन्हें आधार मानकर नहीं चला जा सकता । कोई भौतिक योजना चाहे वह कितनी ही बड़ी और कितने ही अधिक साधनों पर अवलम्बित क्यों न हो इतने महान, इतने व्यापक उद्देश्य को पूरा कर सकने में समर्थ नहीं हो सकेगी ।

परिवर्तन व्यक्ति के अन्तराल का होना है, दृष्टिकोण बदला जाना है, आस्थाओं का परिष्कार किया जाना है और आकांक्षाओं का प्रवाह मोड़ा जाना है । सदाशयता का पक्षधर मनोबल उभारना है, आत्मज्ञान कराना और आत्म-गौरव जगाना है-यही है युग परिवर्तन का मूलभूत आधार । आंतरिक परिष्कार की प्रक्रिया ही व्यक्ति की उत्कृष्टता और समाज की श्रेष्ठता के रूप में परिलक्षित होगी । सारे प्रयास-पुरुषार्थ अन्तर्जगत से सम्बन्धित हैं, इसीलिए साधन भी उसी स्तर के होने चाहिए । सामर्थ्य ऐसी होनी चाहिए जो अभीष्ट प्रयोजन को पूरा कर सकने के उपयुक्त सिद्ध हो सके । निश्चित रूप से यह कार्य आत्म शक्ति का ही

है, उत्पादन और उपयोग उसी का किया जाता है । युग निर्माण के लिए इसी ऊर्जा का उपार्जन आधारभूत काम समझा जा सकता है । ऐसा काम जिसे करने की आवश्यकता ठीक इन्हीं दिनों है ।

आत्मशक्ति का उत्पादन जिन यन्त्रों द्वारा जिन कारखानों में किया जाता है उसे व्यक्ति–चेतना ही नाम दिया जा सकता है । मानवी अन्तःकरण को अणु ऊर्जा उत्पादन केन्द्र के समतुल्य माना जा सकता है । शरीर तो अवतरण मात्र है, इसकी तुलना आयुध, औजार, वाहन आदि से ही की जाती है । उसमें कितना कुछ हो सकता है ? इसे श्रमिक से लेकर पहलवान तक की तुच्छ सफलताओं को देखते हुए जाना जा सकता है । बुद्धिपटल इससे ऊँचा है । वह भी तथाकथित व्यवहार कुशल बुद्धिमानों से लेकर शोधकर्त्ताओं की सीमा तक पहुँचकर समाप्त हो जाता है । उस आधार पर व्यक्ति की उन्नति और समाज की सुविधा कुछ न कुछ तो बढ़ती ही है, पर उतने भर से व्यापक परिवर्तनों की आशा नहीं की जा सकती । पैसा महाशय तो जैसे कुछ हैं वैसे ही है, उसके सहारे लम्बी योजनाएँ बनाने से पहले यह सोचना पड़ता है कि वे जिनके हाथ में रहेंगे, उन्हें नैतिक दृष्टि से जीवित भी छोड़ेंगे या नहीं । सार्वजनिक उपयोग में आने से पहले वे प्रयोगकर्त्ताओं को भी लुभाते और उन्हीं में अटक कर रह जाते हैं । लोकमंगल के लिए बनी सरकारी योजनाओं के लिए निश्चित की गई धनराशि का कितना अंश अभीष्ट प्रयोजन में लगता है और कितना बिचौलिए हड़प जाते हैं, यह कौतुक हर किसी को पग–पग पर देखने के लिए मिलता रहता है । ऐसी दशा में युग निर्माण के लिए उस शक्ति का संचय कर लेने पर भी क्या कुछ प्रयोजन पूरा हो सकेगा ? इसमें पूरा सन्देह है ।

आत्मिक क्षेत्र की योजनाएँ आत्मशक्ति के उपार्जन और नियोजन से ही सम्भव हो सकेंगी । मनुष्य के अन्तराल में सन्निहित ज्ञात और अविज्ञात शक्तियों की समर्थता और संभावना असीम है, उसे अनन्त कहा जाये तो भी अत्युक्ति न होगी । मनश्शास्त्री बताते हैं कि मानवी मस्तिष्क अद्भुत है, उसकी सुविस्तृत क्षमता में से अभी तक मात्र सात प्रतिशत को ही जाना जा सका है । इसमें से जो लोग मात्र एक या दो प्रतिशत का उपयोग कर लेते हैं वे मनीषियों और तत्वदर्शियों में गिने जाते हैं, पर

मनोविज्ञान द्वारा अतीन्द्रिय क्षमताओं की जो जानकारी मिल रही है उससे पता चलता है कि मानवी मस्तिष्क सचमुच ही जादुई तिलस्म है, उसे भानुमती का पिटारा, विलक्षणताओं का भण्डार बताया जाता रहा है। बात वैसी ही है, मस्तिष्क की मात्र सचेतन परत को उभारने और उपयोग कर सकने में समर्थ व्यक्ति कालिदास–वरदराजाचार्य जैसी भूमिकाएँ निभा सकते हैं। अचेतन परतों का कहना ही क्या ? वे ही व्यक्तित्वों के निर्माण और विकास के लिए पूरी तरह जिम्मेदार हैं। वर्तमान और भविष्य की ढलाई इसी टकसाल के अन्तर्गत होती है। कर्मलेख, भाग्य विधान, विधि के अंक, चित्रगुप्त का आलेखन कहाँ होता है ? इसका स्पष्ट संकेत मस्तिष्क के सुनियोजित दफ्तर की ओर ही होता है।

अतीन्द्रिय क्षमताओं को ही ऋद्धियों और सिद्धियों के नाम से जाना जाता है। यह कहीं आसमान से नहीं उतरतीं और न किसी देवी–देवता द्वारा उपहार में दी जाती हैं, वे निश्चित रूप से अपने ही अन्तराल की उत्पत्ति होती हैं। धरती की परतें खोजते जाने और गहरे उतरते जाने पर बहुमूल्य खनिज सम्पदा प्राप्त होती है। समुद्र में गहरी डुबकी लगाकर गोताखोर मोती समेट कर लाते हैं। मानवी अन्तराल भी ऋद्धि–सिद्धियों का अनूठा भण्डार है। परमात्मा का अंश होने के कारण आत्मा में उसकी सभी क्षमताएँ और विशेषताएँ बीज रूप में विद्यमान हैं। अन्तर आकार भर का है। सौर मण्डल और ब्रह्माण्ड परिवार की संरचना और गति व्यवस्था में मात्र आकार का ही अन्तर है। तत्व और तथ्य दोनों में एक ही स्तर के हैं। समूचा मनुष्य छोटे से शुक्राणु में छिपा बैठा होता है। वृक्ष की विशालता और विशेषता बीज के छोटे से कलेवर में भी पाई जाती है। परमात्मा में जो कुछ है वह सब प्रसुप्त रूप से आत्मा की छोटी सत्ता में उसी प्रकार विद्यमान है, जैसे विशाल ग्रन्थ के सहस्रों पृष्ठ छोटी–सी माइक्रो–फिल्म पर अंकित कर लिए गये हों।

सर्व समर्थ परमात्मा के छोटे घटक आत्मा की मूर्छना को जागृति में बदल देने की प्रक्रिया अध्यात्म साधना है और अध्यात्म साधना के विभिन्न विधि–विधानों में गायत्री उपासना को ही सर्वश्रेष्ठ और सुलभ माना गया है। आदिकाल से लेकर अद्यावधि में उस महाविज्ञान के सम्बन्ध में

अनुभवों और प्रयोगों की विशालकाय श्रृंखला जुड़ती चली आई है । प्रत्येक शोध में उसकी नित्य नित्य नूतन विशेषताएँ उभरती चली आई हैं । प्रत्येक प्रयोग में उसके अभिनव शक्ति स्रोत प्रकट होते रहते हैं ।

व्यक्ति का बहिरंग–भौतिक पक्ष सामान्य है । असामान्य तो उसका अन्तराल ही है । उस रहस्यमय क्षेत्र के विशिष्ट उपादनों में गायत्री का कृषि विज्ञान आशाजनक सफलताएँ प्रस्तुत करता है । नवयुग के व्यक्ति को आत्मिक सम्दाओं से सुसम्पन्न बनाना है । धरती पर स्वर्ग के अवतरण में आत्मिक विभूतियों की ही सुसम्पन्नता का विस्तार होगा, भाव संवेदनाओं की उत्कृष्टता ही मनुष्य में देवत्व का उदय करेगी और इसी उत्पादन के बलबूते इस संसार में स्वर्गीय परिस्थितियों का बाहुल्य और दिव्य शक्तियों का वर्चस्व स्थापित हो सकेगा । इस कार्य में गायत्री के तत्वज्ञान और साधना विधान का अनुपम योगदान होगा । अस्तु उसे युग शक्ति गायत्री के रूप में समझा और अपनाया जाना उचित ही माना जायेगा ।

युग परिवर्तन अपने समय का सुनिश्चित तथ्य है । इस विश्व उद्यान का सृजेता अपनी इस अनुपम कलाकृति को इस तरह नष्ट–भ्रष्ट होने नहीं देना चाहता । जिस तरह वह इन दिनों विनाश के गर्त में गिरने के लिए द्रुत गति से बढ़ती जा रही है । मनुष्य उसके वर्चस् और वैभव का प्रतीक है । सारा कौशल एकत्रित करके उसे बड़े अरमानों के साथ बनाने वाले ने उसे बनाया है । सामूहिक आत्महत्या के लिए इन दिनों उसकी उतावली चल रही है । बुद्धि वैभव का भस्मासुर संस्कृति की पार्वती को हथियाने और शिव को मिटाने पर उतारू हो रहा हो तो "यदा यदाहि धर्मस्य....." का आश्वासन निष्क्रियता नहीं अपनाये रह सकता । सन्तुलन के लिए प्रतिज्ञाबद्ध नियति को अपने नियमन का गतिचक्र चलाना ही था, सो वह इन्हीं दिनों हो रहा है । चर्मचक्षु ब्रह्ममुहूर्त के आगमन का आभास भले ही न लगा सकें किन्तु जिन्हें पूर्वाभास की संवेदन शक्ति उपलब्ध है वे देखते हैं–निशा बीत गई और उषा की मुस्कान में अब बहुत देर नहीं है ।

नवयुग के अवतरण का तथ्य विवादास्पद प्रसंग नहीं रहा । उसे अनिश्चित संभावना के रूप में लगभग प्रत्यक्ष ही अनुभव किया जा सकता

है । ध्वंस की शक्तियों का सामना करने के लिए नव सृजन के कदम साहसपूर्वक उठ जायें तो सभी जानते हैं कि जीतेगा कौन ? सत्य ही जीतता है असत्य नहीं । इस श्रुति वचन में सृष्टि की शाश्वत परम्परा का समावेश है । अन्धकार का सामंजस्य तभी तक सघन बन रहा है जब तक प्रकाश की किरणें प्रकट नहीं होतीं । जब विश्व चेतना की पुकार तमस् के प्रति अस्वीकृति और ज्योत की ओर गमन करने की आतुरता व्यक्त कर रही हो तो फिर नव प्रभात का अवतरण सुनिश्चित तथ्य ही माना जाना चाहिए ।

युग परिवर्तन में यों सदा ही विकृतियों का निराकरण और सत्प्रवृत्तियों का संस्थापन होता है, पर रोग और उपचार की भिन्नता प्रायः हर बार होती है । अतीत के पूर्व प्रसंगों में दुष्टता की उद्दण्डता ही विनाश के लिए उभरती रही है, फलतः उसे निरस्त करने के लिए शासनधारी भगवान अवतार ले रहे हैं । बाराह के दाँत, नृसिंह के नख, परशुराम का फरसा, राम का धनुष, कृष्ण का चक्र उस प्रसंग में सहज ही स्मरण हो आते हैं । इस बार दुष्टता का नहीं भ्रष्टता का उभार है, उसके लिए बुद्ध की परम्परा ही कारगर हो सकती है । अनय का निराकरण ज्ञान गंगा के स्वर्ग से धरती पर अवतरण के रूप में होगा । अगली बार का अवतार ऋतम्भरा प्रज्ञा के रूप में होगा । युग चण्डी का साक्षात्कार इन दिनों हम सब इसी रूप में करेंगे । इस बार क्रियागत दुष्टता की जड़ कहीं अधिक गहरी है, वे विकार से भरकर आगे बढ़कर आस्थाओं के क्षेत्र तक को पकड़ चुकी हैं । उनकी जटिलता भ्रष्टता के रूप में प्रकटी है । इसका निराकरण अपेक्षाकृत अधिक कठिन है, इसलिए उपचार भी उतना ही प्रखर, उतना ही उच्चस्तरीय है । इस बार का अवतरण युग शक्ति गायत्री के रूप में है । दुष्टता से निपटने के लिए शस्त्र पर्याप्त हैं किन्तु भ्रष्टता तो अदृश्य है । वह आकांक्षाओं और आस्थाओं की गहराई में जा घुसती है, उतनी ही गहरी डुबकी लगाकर छिपे चोर को ढूँढ़ निकालना और उलटकर निरस्त करना अपेक्षाकृत अधिक जटिल है । इतना व्यापक, इतना जटिल और इतना कठिन काम भगवती आद्यशक्ति ही कर सकती है । अज्ञानजन्य अनाचार प्रज्ञान प्रचण्ड आलोक का उदय हुए बिना और किसी तरह मिट नहीं सकता । इस

बार महान् परिवर्तन को सम्पन्न करने के लिए ब्राह्मी शक्ति को स्वयं ही आना पड़ रहा है । पार्षदों से यह काम चलने वाला था नहीं ।

हर महत्वपूर्ण कार्य के लिए शक्ति चाहिए, कोई भी छोटा–बड़ा यन्त्र शक्ति के बिना चलता नहीं । समष्टि तंत्र की तरह ही व्यक्ति तन्त्र का गतिशील रहना भी शक्ति की मात्रा पर ही निर्भर है । परिवर्तन कृत्यों में तो साधारण की अपेक्षा कहीं अधिक परिणाम में शक्ति की आवश्यकता पड़ती है । ध्वंस और निर्माण दोनों के लिए असाधारण साधन जुटाने होते हैं । संसार के महत्वपूर्ण परिवर्तनों के घटनाक्रमों पर दृष्टिपात करने से प्रतीत होता है कि उनके लिए प्रचुर परिमाण में साधन–शक्ति, श्रम–शक्ति और चिंतन का उपयोग हुआ है । सामाजिक, आर्थिक एवं राजनैतिक क्रांतियों को सबल बनाने के लिए समय–समय पर असाधारण सामर्थ्य का उपयोग होता रहा है । यदि वह साधन न जुटते तो लक्ष्य की प्राप्ति हो ही नहीं सकती थी । इस बार की युग परिवर्तन रणस्थली जिस 'धर्म क्षेत्र कुरुक्षेत्र' की विस्तृत भूमि में फैली हुई है, उसे लोकमानस कह सकते हैं । परिष्कार और परिवर्तन के सरंजाम उसी परिधि में खड़े किए जाने हैं । सेनापतियों के खेमे उसी भूमि में गढ़ रहे हैं । लक्ष्य जनमानस का परिष्कार है । प्रस्तुत समस्याएँ इतनी जटिल हैं कि उनका समाधान बाह्य उपचारों से किसी भी प्रकार सम्भव न होगा । चिन्तन का प्रवाह उलटे बिना विनाश की विभीषिका को विकास की संभावना में परिवर्तित नहीं किया जा सकता । चिंतन की दिशाधारा को सुव्यवस्थित करने वाले दिव्य प्रकार को युगान्तर चेतना कहा जा सकता है । यही युग शक्ति गायत्री है । युग परिवर्तन का उद्गम स्रोत इसी को समझा जाना चाहिए । उसके क्रिया–कलाप अनेकों अवांछनीयताओं के लिए ध्वंसात्मक और औचित्य के लिए सृजनात्मक क्रियाकलापों में देखे जा सकेंगे ।

यों मोटी दृष्टि से श्रम–साधन और प्रशिक्षण को ही सृजन और परिवर्तन का आधार समझा जाता है, पर जो वास्तविकता को समझते हैं उन्हें ये मानने में तनिक भी कठिनाई नहीं होती कि मानवी सत्ता का वास्तविक केन्द्र उनकी आस्था–आकांक्षाओं में है । आदर्शवादी परिवर्तनों के लिए इसी केन्द्र में उथल–पुथल करनी होती है अन्यथा बाहरी लीपापोती मुरझाये पत्तों पर जल छिड़कते फिरने की तरह उपहासास्पद ही बन

जाती है । जड़ें सींचने से ही पत्ते की मुर्दनी दूर हो सकती है और जनमानस के गहरे अन्तराल में आदर्शवादी श्रद्धा का उपयोग करने से ही मनुष्य बदलता है और इस बदलने के फलस्वरूप ही गतिविधियों और परिस्थितियों में चिरस्थायी सुधार दृष्टिगोचर होता है । जिन्हें इस समस्या के समझने का अवसर मिल जायेगा उन्हें यह स्वीकार करते देर न लगेगी कि युग परिवर्तन में गायत्री तत्वज्ञान की असाधारण भूमिका किस प्रकार हो सकती है ? युगदृष्टा-मनीषियों ने तथ्य को देखा और सर्वसाधारण को सुझाया कि आस्था क्षेत्र से उपयोगी उभार उत्पन्न करने के लिए अवतरित हुई युग शक्ति गायत्री की प्रतिक्रिया को गम्भीरतापूर्वक समझें और श्रद्धापूर्वक अपनायें । समग्र परिवर्तन बौद्धिक, नैतिक और सामाजिक क्रान्ति तीन खण्डों में बँटा हुआ है, इसे त्रिपदा की तीन धारायें कहा जा सकता है ।

जनमानस का परिष्कार युग परिवर्तन का आधारभूत तथ्य है, वह इसी रूप में परिलक्षित होगा । मनुष्य की आकृति तो यथावत बनी रहती है किन्तु प्रकृति बदल जाती है । अन्तरंग बदलना हो तो बहिरंग को उलटते देर नहीं लगती । युग शक्ति गायत्री का अवतरण और क्रिया-कलाप इसी रूप में देखा-समझा जा सकता है । युग परिवर्तन में इस बार उसी की भूमिका सर्वोपरि होगी । ज्ञानयज्ञ और विचार क्रान्ति अभियान के रूप में उसी आद्यशक्ति की हलचलों को उभरते हुए देखा जा सकता है ।

गायत्री मंत्र यों सामान्य दृष्टि से देखने पर पूजा-उपासना में प्रयुक्त होने वाला हिन्दू धर्म में प्रचलित एक मन्त्र मात्र प्रतीत होता है । मोटी दृष्टि से उसकी आकृति और परिधि छोटी मालूम पड़ती है किन्तु वास्तविकता इससे कहीं अधिक व्यापक है । गायत्री मन्त्र ही शक्ति है, उसका प्रत्यक्ष रूप २४ अक्षरों के गुन्थन में देखा जा सकता है । भारतीय धर्म का उसे प्राण उद्गम एवं मेरुदण्ड कह सकते हैं । शिखा गायत्री है, यज्ञोपवीत गायत्री है । उसे वेदमाता, देवमाता कहा गया है । ब्रह्मविद्या का तत्वज्ञान और ब्रह्मवर्चस का तप विधान इसी उद्गम केन्द्र में गंगोत्री-यमुनोत्री की तरह प्रकट-प्रस्फुटित होता है । भारत का गौरवमय अतीत ऐसे देवमानवों का इतिहास है जो अपनी मातृभूमि को स्वर्गादपि गरीयसी बनाने के साथ-साथ समस्त विश्व वसुन्धरा को समृद्धियों

और विभूतियों से सुसम्पन्न बनाने की ही भूमिका निभाते रहे । ऐसे देवमानवों के अन्तःकरण जिस साँचे में ढलते थे उसे निःसंकोच गायत्री तत्वज्ञान और तप विधान कहा जा सकता है ।

गायत्री महाशक्ति का प्रथम अरुणोदय भारत भूमि पर हुआ । इसके लिए स्वभावतः इसी क्षेत्र में सर्वप्रथम और सर्वाधिक परिमाण में अपना वर्चस्व प्रकट कर सकना अनायास ही सम्भव हो गया, पर इससे यह नहीं समझा जाना चाहिए कि उसका सीमा-क्षेत्र उतना ही स्वल्प है । जापानी अपने देश में सर्वप्रथम सूर्य के उदय होने की मान्यता बनाये हुए है और अपने को सूर्य पुत्र कहते हैं । उनकी मान्यता को बिना आघात पहुँचाये हुए भी यह प्रत्यक्ष देखा जा सकता है कि भगवान सूर्य जापान तक सीमित नहीं है, वे समस्त भू-खण्डों को समान रूप से अपने अनुग्रह से लाभान्वित करते हैं । गायत्री को इसी रूप में समझा जाना चाहिए । वेदमाता उसका आरम्भिक रूप है । उसकी व्यापकता देवमाता और विश्वमाता के रूप में देखी जा सकती है ।

वेदमाता-देवमाता-विश्वमाता

वेदमाता का रूप धारण करके गायत्री महाशक्ति ने इसी धरती पर अपने प्रथम अवतरण का परिचय दिया । मनुष्य को जिस ज्ञान और विज्ञान की आवश्यकता थी वह उसने इस उद्गम स्रोत से पाया । जब अधिक समझने की जिज्ञासा हुई तो गायत्री के शीर्ष और तीन चरण-इन चारों खण्ड विभाजनों की सुविस्तृत व्याख्या- विवेचना करने के लिए चार वेदों का प्रकटीकरण हुआ ।

गायत्री महाशक्ति का अवतरण वेदमाता के रूप में हुआ, उसकी प्रखरता और परिपक्वता का परिचय देवमाता के रूप में सामने आया । ऋतम्भरा प्रज्ञा की अन्तराल में प्रतिष्ठापना होने के उपरान्त विचारणा का स्तर उस ऊँचाई तक जा पहुँचा है जिसे ब्रह्मलोक कहते हैं । शरीर पर मनःचेतना का परिपूर्ण नियन्त्रण है, जैसा सोचा जाता है, वैसा कर्म अनायास ही होने लगता है । उत्कृष्ट चिंतन की परिणति आदर्श कर्तृत्व में होनी चाहिए । गुण, कर्म, स्वभाव की उत्कृष्टता के धनी व्यक्ति ही देवता कहलाते हैं । मान्यता है कि देवताओं का निवास स्वर्ग में है ।

इसका स्पष्टीकरण इतना ही है कि जहाँ श्रेष्ठ व्यक्ति रहते हैं वहाँ उनके आचरण–व्यवहार से वातावरण में स्वर्गीय सुख–शान्ति दृष्टिगोचर होती है । सज्जनता की सहज परिणति समृद्धि और प्रगति में होती है, उसके फलस्वरूप सन्तोष और आनन्द की मनःस्थिति एवं परिस्थिति सर्वत्र बिखरी पड़ती युगांतरीय चेतना है । इसी वस्तुस्थिति को पौराणिक भाषाओं में देवताओं का निवास स्वर्ग में होने की बात की जाती रही है ।

गायत्री को प्रखरता की स्थिति में देवमाता कहा गया–इस प्रतिपादन में उचित निर्धारण है । सृष्टि का, आदिकाल का वेदमाता स्वरूप प्रगति के मध्यकाल में 'देवमाता' बन गया । इतिहासकार इसी युग का वर्णन सतयुग के नाम से करते हैं, उसे 'देवयुग' भी कहा जा सकता है । उन दिनों भारत के नागरिक संसार भर में जनसंख्या के आधार पर तेतीस कोटि देवता माने जाते थे । उनके उच्चस्तरीय व्यक्तित्व सहज ही यह लोक–सम्मान अर्जित कर रहे थे । उन दिनों की परिस्थितियाँ इतनी सुसम्पन्न एवं सुखद थीं कि इस समृद्धि से लदी हुई भारतभूमि को संसार भर में एक स्वर से स्वर्गादपि गरीयसी कहा जाता था । भारत को जगद्गुरु और चक्रवर्ती शासक कहलाने का श्रेय उन्हीं दिनों मिला था । उनने अपनी उत्कृष्टता को समस्त संसार में बखेरा था, फलतः कृतज्ञता के भावभरे उपहार इस देशवासियों को मिलते थे, उन्हीं दिनों की भारतीय संस्कृति देव संस्कृति कही जाती थी । उस गौरव भरे अतीत की चर्चा करते हुए इस गई–गुजरी स्थिति में भी हमारा मस्तक सहज ही ऊँचा हो जाता है । गायत्री तत्वज्ञान का व्यवहार में समावेश होने की स्थिति का निरूपण करते इस प्रकटता का नाम देवमाता उचित ही दिया गया ।

अवतरण और अभिवर्धन की दोनों कक्षाएँ पार करके अब गायत्री महाशक्ति को विश्वमाता बनने की सुविस्तृत भूमिका निभानी पड़ रही है । इसे प्रौढ़ता और परिपूर्ण प्रचण्डता की स्थिति कह सकते हैं । दुर्गा अवतरण की प्रौढ़ता उन दिनों थी जब उनने महिषासुर, मधुकैटभ, शुम्भ–निशुम्भ, रक्त–बीज आदि दुर्दान्त दैत्यों के साथ रोमांचकारी युद्ध करके उन्हें परास्त किया था । गायत्री की प्रस्तुत युगांतरीय चेतना को इसी स्तर का समझा जाना चाहिए । विचार क्रान्ति के रूप में उसके दावानल जैसे विस्तार को इन्हीं दिनों प्रत्यक्ष देखा जा सकता है ।

सामयिक परिस्थितियों की विषमता भयावह है। आन्तरिक विकृतियों ने मान्वी गरिमा की जड़ें काटकर रख दी हैं। नीति का परित्याग करके लिप्साग्रस्त मनुष्य वह करने लगा है जो उसके लिए हर दृष्टि से अशोभनीय है। उत्कृष्टता के उत्तरदायित्वों का परित्याग करके निकृष्टता अपनाने वाले शीर्षस्थ मनुष्य ने सामूहिक आत्महत्या जैसी परिस्थितियाँ उत्पन्न कर ली हैं। प्रगति के नाम पर दीखने वाले चकाचौंध से बुद्धि भ्रम तो अवश्य ही होता है, पर वस्तुस्थिति यह है कि हम पतन के गर्त में गिरते और दुर्गति के अनेकानेक त्रास सहते हुए मौत के दिन पूरे कर रहे हैं। लगता है प्रलय जैसा महाविनाश किसी भी दिन वज्रपात की तरह सिर पर टूटने वाला है। सर्वत्र आतंक छाया हुआ है, भावी आशंकाओं से जनमानस बुरी तरह भयभीत हो रहा है।

सृष्टा का अपनी बहुमूल्य कलाकृति इस विश्व वसुधा से असाधारण लगाव है, इसलिए तो जब कभी लोक चेतना पर भ्रष्टता की काली घटायें छाई हैं तभी उन्हें हटाने के लिए, सन्तुलन बनाने के लिए भगवान के अवतार होते रहे हैं। 'यदायदाहि धर्मस्य......' का आश्वासन भूतकाल में उचित अवसर पर पूरा किया जाता रहा है। इन दिनों भी उसी की पुनरावृत्ति हो रही है। लोकमानस में घुसी दुष्प्रवृत्तियों का उन्मूलन करने के लिए इस बार उसका स्वरूप ऋतम्भरा प्रज्ञा का ही हो सकता था। व्यापक क्षेत्र का परिशोधन, जनमानस का परिष्कार करने के लिए जिस दिव्य चेतना का अवतरण ऊँचे लोकों से धरती पर इन दिनों हो रहा है, उसे युग शक्ति गायत्री कहा गया है। उसकी भूमिका विश्वमाता जैसी है, उज्ज्वल भविष्य के निर्माण में उसी का आलोक काम करेगा। नवनिर्माण के लिए इन दिनों जिस प्रचण्ड आत्मशक्ति की आवश्यकता अनुभव की जा रही है। उनका दिव्य अनुदान संत्रस्त मानवता को युग शक्ति गायत्री के रूप में ही मिलने जा रहा है। व्यक्ति और समाज की समस्याओं का चिरस्थाई समाधान इसी माध्यम से सम्भव होगा।

भूतकाल में सम्भव है कि उस महाशक्ति को सम्प्रदाय, जाति, लिंग आदि के घेरे में प्रतिबन्धित किया गया हो, पर अब अगले दिनों वैसा सम्भव नही। दीपक कैद हो सकता है, सूरज नहीं। युग शक्ति गायत्री पर धर्म–देश का अनुबन्ध नहीं होगा, वह सार्वभौम, सर्वजनीन और

सर्वसुलभ होगी । 'वसुधैव कुटुम्बकम्' के आदर्शों का पालन करने के लिए विश्व मानव को आगे घसीटने और ऊँचा उछालने वाली दिव्य शक्ति को, संसार को सुन्दर बनाने का उपक्रम पूरा करना है । इसलिए उसकी व्यापकता को देखते हुए युग शक्ति के नाम से संबोधन किया जाना वस्तुस्थिति का परिचायक माना जायेगा । अवांछनीयता का ध्वंस और शालीनता का सम्बर्द्धन करने की दोनों ही विशेषताएँ गायत्री मन्त्र में मौजूद हैं । उसके तत्वज्ञान और विधि-विधान में वे तत्त्व भरे पड़े हैं जिनके सहारे नये संसार का भौतिक एवं आत्मिक पुनरुत्थान भली प्रकार किया जा सके । विश्व शान्ति और विश्व समृद्धि का उभय पक्षीय प्रयोजन जिस दिव्य चेतना के माध्यम से इन दिनों हो रहा है, उसे विश्वमाता ही कहा जायेगा ।

संस्कृत शब्दावलि में गुन्थित और उपासना उपचार में प्रयुक्त होने पर भी गायत्री मन्त्र को उतनी परिधि में सीमित नहीं किया जा सकता । उसका कार्यक्षेत्र और विकास-विस्तार अत्यधिक है । इतना व्यापक कि जिसे मनुष्य की हर समस्या के समाधान और हर सुखद संभावना का साधन मानने में किसी विचारशीलन को कोई कठिनाई नहीं होनी चाहिए । नवयुग के अवतरण की सुखद संभावनाओं में गायत्री महाशक्ति की भूमिका ही प्रधान रहेगी ।

बीज छोटा-सा होता है, उसके अन्तराल में विशाल वृक्ष की समस्त विशेषताएँ सूक्ष्म रूप में विद्यमान रहती हैं । परमाणु तनिक-सा होता है, पर उसकी अन्तरंग क्षमता और गतिशीलता को देखकर आश्चर्यचकित रह जाना पड़ता है । शुक्राणु में पाये जाने वाले गुण-सूत्र प्रत्यक्षतः बहुत ही तुच्छ होते हैं, पर उनमें महान मानव का अस्तित्व जमा बैठा होता है । गायत्री मंत्र को भी ऐसी ही उपमा दी जा सकती है । उसका आकार छोटा रहने और उपयोग तनिक-सा दीखने पर भी वस्तुतः संभावना इतनी व्यापक है कि उसे नई दुनियाँ गढ़ देने में समर्थ कहा जा सके ।

ब्राह्मी चेतना की महाशक्ति गायत्री के दो रूप हैं-एक ज्ञान दूसरा विज्ञान । ज्ञान पक्ष को उच्चस्तरीय तत्वज्ञान की, ब्रह्मविद्या की, ऋतम्भरा की संज्ञा दी जा सकती है । इसका उपयोग आस्थाओं और आकांक्षाओं को उच्चस्तरीय बनाने के लिए आवश्यक प्रशिक्षण के रूप में किया जा

सकता है । ज्ञानयज्ञ–विचार क्रान्ति आदि के बौद्धिक उत्कृष्टता के साधन इसी आधार पर जुटते हैं । लेखनी, वाणी एवं दृश्य–श्रवण जैसे साधनों का उपयोग इसी निमित्त होता है । स्वाध्याय, सत्संग, चिन्तन, मनन आदि की गतिविधियाँ इसी के निमित्त चलती हैं ।

गायत्री का दूसरा पक्ष है–विज्ञान । उपासना एवं साधना की अनेकों प्रथा पद्धतियों के रूप में यही विधि–विधान बिखरा पड़ा है । मोटे रूप से यह सब ऐसा प्रतीत हाता है कि किसी देवी–देवता की अभ्यर्थना करके कुछ मनोवांछित प्राप्त करने के लिए मनुहार करने जैसा है, किन्तु वास्तविकता ऐसी है नहीं । मानवी सत्ता के अन्तराल में इतनी महान् संभावनाएँ और क्षमताएँ प्रसुप्त स्थिति में भरी पड़ी है कि उन्हें प्रकारान्तर से ब्रह्मचेतना की प्रतिकृति 'ट्रू कापी' कहा जा सके । अन्तराल की प्रसुप्तता ही दरिद्रता है और उसकी जागृति में सम्पन्नता का महासागर लहलहाता देखा जा सकता है । जो उसे जगाने–साधने और सदुपयोग करने में समर्थ हो सकें उन्हें महामानव की संज्ञा दी गई है । उनने ऐतिहासिक भूमिकाएँ निबाही हैं । स्वयं धन्य बने हैं और अपने सम्पर्क क्षेत्र के जन समुदाय एवं वातावरण को धन्य बनाया है ।

व्यक्ति का शरीर तो प्रायः साढ़े पाँच फुट लम्बे और डेढ़ मन भारी काय कलेवर के रूप में दीखता है, पर उसकी मूल सत्ता चेतना के गह्वर में अन्तःकरण में छिपी बैठी है । वहाँ जैसा भी वातावरण होता है उसी में चेतना को निर्वाह करना पड़ता है, फलतः उसका स्वरूप भी वैसा ही बन जाता है । टिड्डे हरी घास में रहने पर हरे रहते हैं और सूखी घास में रहने पर पीले बन जाते हैं । अन्तःकरण का स्तर ही चेतना की उत्कृष्टता और निकृष्टता के लिए उत्तरदायी है । इस अन्तराल के मर्मस्थल का स्पर्श भौतिक उपकरणों से सम्भव नहीं हो सकता है । उतनी गहराई तक सचेतन उपचार ही पहुँचते हैं । गायत्री महामन्त्र की साधना–उपासना का प्रयोजन यही है । इसी उपाय–उपचार को गायत्री महाविज्ञानी कहते हैं । प्रसुप्त का जागरण उसका उद्देश्य है । मनुष्य की महानता इन्द्रियातीत है, उसे सुधारने, उभारने एवं उछालने के तीनों प्रयोजन पूरे करने वाली प्रक्रिया का नाम गायत्री उपासना है, इस विज्ञान पक्ष के सहारे भौतिक प्रगति के अनेकों आधार खड़े होते हैं । ज्ञानयज्ञ के

अन्तर्गत चिन्तन और दृष्टिकोण में ऐसा परिष्कार होता है जिसे ऋषिकल्प कहा जा सके । व्यष्टि और समष्टि के दोनों ही पक्षों को समुन्नत बनाने के लिए गायत्री विद्या की उपयोगिता असाधारण है । सामयिक प्रयोजनों की पूर्ति के लिए उसी की भूमिका युग शक्ति के रूप में सम्पन्न होने जा रही है ।

अधर्म के समस्त पक्षधर क्रिया–कलापों का नियमन करने और धर्मरक्षा के समर्थन में पुनरुत्थान का उद्‌देश्य लेकर समय–समय पर भगवान के अवतार होते रहे हैं । इसके लिए सामयिक परिस्थितियों के अनुरूप समाधान प्रस्तुत किए जाते हैं । अवतार की यही लीलाएँ हैं । हर अवतार का उद्‌देश्य तो एक ही रहता है–समष्टि गत विकृत मनः–स्थिति और विपन्न परिस्थिति का समाधान । इसके लिए अनीति, विरोधी और नीति समर्थक गतिविधियों का सुनियोजन ही अवतार का एकमात्र कार्यक्रम होता है । इस कार्यक्रम का स्वरूप क्या हो ? इसका निर्धारण सामयिक समस्याओं के स्वरूप को देखकर निर्धारित होता है । यही कारण है कि ईश्वर अवतरण के लक्ष्य एक रहते हुए भी विभिन्न अवतारों के क्रिया–कलापों में अन्तर पाया जाता है । भगवती–सरस्वती का अवतार बौद्धिकता की परिपुष्टि के लिए, शिक्षा के लिए आवश्यक साधन एवं उत्साह साथ लेकर हुआ था । सरस्वती को बौद्धिकता एवं दुर्गा की सामाजिकता को क्रान्ति चेतना कहा जा सकता है । तीसरी शक्ति है–गायत्री । गायत्री है अन्तःक्षेत्र की आध्यात्मिकता और बाह्य क्षेत्र की नैतिकता । गायत्री अवतरण के साथ–साथ ही नीति–धर्म एवं अध्यात्म का अवतरण हुआ । वेद के माध्यम से तत्वज्ञान, अनुशासन और नीति–निर्धारण की व्यवस्था चली । लक्ष्मी चेतना पक्ष में नहीं जातीं, वे भौतिकता एवं कला की प्रतीक हैं । अस्तु अवतरण प्रसंग में उनका, उनकी लीलाओं का उल्लेख नहीं होता है ।

अपने युग की समस्त विकृतियाँ अपेक्षाकृत अधिक गहरी हैं । उनने मानवी अन्तराल में अनास्था के रूप में जड़ें जमाई हैं और चिन्तन एवं कर्तृत्व को भ्रष्ट करके रख दिया है । जनमानस का परिष्कार ही वर्तमान आस्था संकट के निराकरण का, समस्त समस्याओं के समाधान का एक मात्र उपाय है । उज्ज्वल भविष्य के आश्वासन का यही केन्द्र बिन्दु है । सुधार और उत्थान के अन्यान्य उपचार तो इसी केन्द्र बिन्दु के इर्द–गिर्द

परिभ्रमण करते हैं । प्रस्तुत युग क्रान्ति को अनास्थाओं के उन्मूलन और आस्थाओं के आरोपण का लक्ष्य पूरा करने में संलग्न देखा जा सकता है । अपने युग में ब्राह्मी चेतना के अवतरण का यही स्वरूप प्रकट होते देखा जा सकता है ।

अवतार चर्चा में प्रायः नेतृत्व करने वाले व्यक्तियों को श्रेय मिलता रहा है । इसे चर्मचक्षुओं का स्थूल मूल्यांकन कहा जा सकता है । वस्तुतः युग परिवर्तन सूक्ष्म जगत में उठने वाले तूफानी चेतना प्रवाह के रूप में दिव्य लोक से उठते–उभरते हैं । उससे प्रभावित होकर अगणित जागृत आत्माएँ कन्धे से कन्धे मिलाकर अपने–अपने ढंग से उत्तरदायित्वों का निर्वाह करती हैं । हर अवतार का यही तात्विक स्वरूप है । अगली लाइन में खड़े व्यक्ति का फोटो कैमरे में अधिक साफ आता है । इतने पर भी महत्व और अस्तित्व उस ग्रुप के सभी सदस्यों का होता है । अवतारों के नाम से प्रख्यात व्यक्तियों को अगली लाइन में खड़े विशेष नेतृत्व भर करने वाले श्रेयाधिकारी कहा जा सकता है । तत्वतः अवतार तो सूक्ष्म जगत में कोलाहल मचाने वाली युग चेतना को ही समझा जा सकता है । नौ अवतरण पूरे हुए, अब दसवाँ अवतरण अपने समय का अवतार युग शक्ति गायत्री का है । अन्धकार युग का निराकरण और उज्ज्वल भविष्य का शुभारम्भ इसी दिव्य भावना के साथ प्रादुर्भूत होता हुआ हम सब अपने इन्हीं चर्मचक्षुओं से प्रत्यक्ष देख रहे हैं ।

नवयुग का आगमन और प्रज्ञावतार

निकट भविष्य में ऐसे स्वर्णिम युग की संभावना सुनिश्चित है, जिसमें मनुष्य में देवत्व का उदय और धरती पर स्वर्गीय वातावरण प्रत्यक्ष देखा जा सकेगा । सृष्टा ने अपने इस विश्व उद्यान को बड़े ही अरमानों को दाव पर लगाकर सृजा है । वह उसे सहज ही नष्ट नहीं होने दे सकता । पतनोन्मुख प्रवृत्तियाँ ढलान की ओर लुढ़कने वाले पानी की तरह हैं, वे अपने साथ–साथ लोक मानस को भी निकृष्टता के गर्त में गिरने के लिए घसीटती चली जाती हैं और विनाश की विभीषिकाएँ सामने आ खड़ी होती हैं । इतने पर भी सृष्टा की सजगता बनी ही रहती है और वह अपने प्रबल प्रयत्न से असन्तुलन को सन्तुलन में बदल ही देता है ।

अवतरण प्रक्रिया इसी को कहते हैं । बढ़े हुए अधर्म का निराकरण और घटे हुए धर्म का अभिवर्धन, यही होता है अवतारों का प्रयोजन । अवतारी शक्तियाँ विकृतियों से जूझतीं और सत्प्रवृत्तियों को उछालती हुई अपनी जीवन लीला का परिचय देती हैं ।

इन दिनों विनाश की विभीषिकाएँ काली घटाओं की तरह पूरे आकाश में छाई हुई हैं । आश्चर्य यह है कि साधनों का बाहुल्य होते हुए भी यह सब हो रहा है । विकृतियों के गगनचुम्बी होने के समय तो इतिहास में पहले भी आये हैं, पर वे इतने भयानक नहीं हो सके जितने इन दिनों हैं । भूतकाल में असुरों के अत्याचार आक्रमणपरक होते थे । भौतिक साधनों से वे प्रहार करते थे, फलतः अवतार उन्हें उसी स्तर की शक्ति से मरोड़ कर रख देते थे । रावण, कंस, हिरण्यकश्यप, महिषासुर, वृत्रासुर आदि के आक्रमण-अत्याचारों को अवतारों ने अस्त्र-शस्त्रों से ही निरस्त किया था । दूसरे प्रकार की विनाश विभीषिकाएँ अभावों के रूप में सामने आती रही हैं । अन्न, जल आदि साधनों के अभाव में नीति और धर्म को तिलांजलि देने वाले लोगों की गतिविधियों को देखकर 'विभुक्षितः किं न करोति पापं' की उक्ति याद आ जाती है । भूखी सर्पिणी अपने ही अण्डे-बच्चों को निगलती देखी गई है । मनुष्य की अधःपतित मनःस्थिति भी ऐसे ही कुकृत्य करती और अपने ही पाप में आप ही जलती देखी जाती है । एसे अवसरों पर अवतारों का क्रिया-कलाप अभावों को दूर करने और समृद्धि के स्रोत संचार करने का होता है । भगवती दुर्गा तो असुर निकन्दनी कहलाती है, पर सरस्वती और लक्ष्मी तो समृद्धि ही बरसाती हैं । गंगावतरण इसका प्रत्यक्ष उदाहरण है । अभाव को दूर करने की प्रक्रिया भी अनय का ध्वंस करने के समतुल्य है । अवतार सत्ता का यह महत्वपूर्ण कार्य रहा है । भारतीय धर्म में दस एवं चौबीस अवतारों का अधिकांश का कार्य अन्याय और अभावें को दूर करने और शान्ति की सुखद संभावना उत्पन्न करना ही रहा है ।

अपने युग की परिस्थितयाँ अपने ढंग की अनोखी हैं । इनमें न तो कंस और रावण की तरह आक्रमण उत्पीड़न हैं और न दुर्भिक्ष, दुर्घटना जैसा कोई दैवी संकट । फिर भी स्थिति की विपन्नता ऐतिहासिक महासंकटों

की तुलना में कहीं अधिक भयानक है । विपत्ति का नया स्वरूप है—आस्था संकट । मानवी अन्तराल में ऐसी मान्यताओं ने जड़ जमा ली है जिन्हें आदर्शों के प्रति अनास्था कह सकते हैं । संकीर्ण स्वार्थपरता पर आधारित विलासी अहमन्यता ही आज जन-जन की आराध्य बन गई है । लोभ और मोह की ललक दावानल की तरह बढ़ रही है और अपनी लपटों में उस सबको लपेट रही है जिसे मानवी गरिमा के रूप में देखा और जाना जाता रहा है ।

निश्चित ही अपने युग का महादैत्य 'आस्था संकट' है । वह जनमानस की गहरी परतों तक प्रवेश पाने में सफल हो गया है, इतनी गहराई तक भौतिक उपाय-उपचारों का प्रवेश नहीं हो सकता । दलदल में फँसे हाथी को चतुर हाथी ही अपनी बुद्धिमत्ता के सहारे बाहर निकाल पाते हैं । अनास्था के निराकरण में भाव श्रद्धा की प्रखरता ही समर्थ हो सकती है । इसलिए इस बार युग अवतार ऋतम्भरा प्रज्ञा के रूप में हो रहा है । गायत्री महाशक्ति का अवतरण ही अपने युग के आस्था संकट को दूर करने का एक मात्र आधार हो सकता था, वही हो भी रहा है ।

अब से २५०० वर्ष पूर्व प्रज्ञा अवतरण का एक खण्ड धर्मचक्र प्रवर्तन के रूप में अपनी इसी अवतारों की क्रीड़ाभूमि से प्रादुर्भूत हुआ था । उसने 'बुद्धं शरणं गच्छामि' का उद्‌घोष किया था । जन-मानस को बुद्धि की शरण में जाने की, प्रज्ञा का अवलम्बन ग्रहण करने की प्रेरणा दी थी । मूढ़ताओं और दुष्टताओं को उसने एक साथ ललकारा था । विगत का निकटतम अवतार 'बुद्ध' को माना जाता है । उनने अपने समय की आवश्यकता-साधनों के अनुरूप एक विशाल क्षेत्र में पूरी की थी । समूचा एशिया महाद्वीप उस आलोक से अनुप्राणित हुआ था । प्रायः ढाई लाख नर-नारियों ने तत्कालीन अवतार प्रक्रिया का सहयोग करने के लिए अपने भाव भरे अनुदान प्रस्तुत किये थे । जीवनदानी, चीवरधारी भिक्षुगण भारतभूमि के कोने-कोने में फैले और सुदूर देशों में अनेकानेक असुविधाओं का सामना करते हुए चले गये थे । 'धम्मं शरणं गच्छामि' का मार्गदर्शन उस सृजन-सेना ने घर-घर पहुँचाया और जन-जन को पुण्य प्रयोजन का सहभागी बनने के लिए सहमत किया । वह एक बड़ी क्रान्ति थी । शताब्दियों का छाया कुहासा उनने धोकर साफ किया

था । बौद्धिक क्रान्ति के देवता भगवान बुद्ध को भाव परिष्कार के क्षेत्र में अधिक स्पष्टतापूर्वक देखा जाता है । यों तो सप्त ऋषियों से लेकर अन्यान्य महामानव भी इसी दिशा में बहुत कुछ करते ही रहे हैं ।

बहुधा किसी भयंकर क्षत–विक्षत घायल के लिए जब कई बड़े आपरेशन आवश्यक होते हैं तो कुशल चिकित्सक उस कार्य को एक बार ही निपटा देने की उतावली नहीं करते । बीच–बीच में विराम देकर ऑपरेशनों की श्रृंखला चलाते हैं । यों आमतौर से तो साधारण घायलों की जोड़–गाँठ एक बार में ही कर दी जाती है, पर अनेक अवयव क्षत–विक्षत हो गये हों, तो खण्ड उपचार का सहारा लेने से ही रोगी की प्राणरक्षा शक्य दीखती है अन्यथा घायल की सहनशक्ति जवाब दे सकती है और चिकित्सक का एक बार ही सब कुछ कर देने का निर्णय हानिकारक सिद्ध हो सकता है । इसलिए एक साथ सम्पूर्ण के स्थान पर थोड़ा–थोड़ा कई बार की नीति भी कई बार अधिक उपयोगी समझी जाती है । जनमानस में गहराई तक घुस पड़ी विकृतियों के निष्कासन के सम्बन्ध में भी महाकाल ने यही नीति अपनाई प्रतीत होती है । प्रथम चरण में बौद्धिक क्रान्ति बुद्ध के नेतृत्व में हुई, अब क्रन्ति ज्ञानयज्ञ की लाल मशाल के रूप में सम्पादित हो रही है ।

पिछले अन्धकार युग में नैतिक, बौद्धिक और सामाजिक स्तर की जो भ्रष्टताएँ चलती रही हैं, उनसे सूक्ष्म जगत का सारा वातावरण अनाचारी प्रदूषण से भर गया है । रेडियो विकरण की तरह इसी का भयावह प्रभाव प्राणियों–पदार्थों विशेष कर मनुष्यों को प्रभावित कर रहा है । दुष्टता के तत्व इन सबको महामारी के विषाणुओं की तरह प्रभावित करते हैं । वातावरण में सर्दी–गर्मी भरी होती है, तो उसका प्रभाव सर्वत्र दीखता है । वायु मण्डल में बीमारियाँ भर जाती हैं, तो भले चगे आदमी भी रोग–शैया पर गिरते और मौत के चंगुल में अनायास ही जा फँसते हैं । वसन्त और वर्षा का प्रभाव वनस्पतियों से लेकर प्राणियों तक की मनःस्थिति पर प्रत्यक्ष दृष्टिगोचर होता है । इस परोक्ष वातावरण के अनुरूप ही युगों का नामकरण किया जाता है । युग परिवर्तन का आध्यात्मिक स्वरूप सूक्ष्म जगत में संव्याप्त वातावरण को परिष्कृत करना ही समझा जाना चाहिए । विकृतियाँ जिस क्षेत्र में घुसी हुई हैं, सुधार परिवर्तन

का लक्ष्य भी उसी में उथल–पुथल एवं सुधार करना हो सकता है । यह कार्य भौतिक उपचारों से नहीं वरन् आत्मशक्ति के प्रचण्ड प्रयोग से ही सम्भव है ।

इस समय की परिस्थितियों पर विचार करते हैं तो प्रतीत होगा कि स्थिति बड़ी ही विचित्र और विलक्षण है । भ्रष्ट चिंतन के कारण उत्पन्न हुए बुद्धिभ्रम ने लोगों के मस्तिष्क को उन्मादी और सनकी जैसा बना दिया है । खीझ और तनाव के कारण लोग पूरे दिन तनावग्रस्त–बेचैन दिखाई देते हैं । इसके अतिरिक्त स्नेह, सौहार्द, विश्वास, सहयोग जैसे सद्भाव इसी आग में गलते और जलते चले आ रहे हैं । अन्य प्राणियों की तुलना में मनुष्य की जो गरिमा बताई गई है, वह भौतिक साधनों की दृष्टि से भले दृष्टिगोचर होती है । परन्तु मन, परिवार, समाज के क्षेत्रों में तो उसकी समाप्ति ही होती जाती है और लगता है कि प्राणियों को सौम्य–सरल जीवन का जो आनन्द मिलता है मनुष्य उसे गँवा बैठेगा ।

यही हाल सामाजिक कुरीतियों, राजनैतिक दुरभि–संधियों, अन्ध–परम्पराओं तथा पारस्परिक व्यवहार में छद्म–धूर्तताओं का है । इस तरह की प्रवृत्तियाँ जिस तेजी से बढ़ रही हैं, उन्हें देखते हुए लगता है कि सहजीवन के आधार नष्ट होते जा रहे हैं और मत्स्य न्याय का, जंगली कानून का बोलवाला होने जा रहा है । बढ़ते हुए अनाचार ने व्यक्तिगत जीवन में, सामाजिक राष्ट्रीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय जीवन में इतनी समस्याएँ उत्पन्न कर दी हैं, जिनके हल मिल नहीं रहे हैं । अणु–आयुधों ने इस सुन्दर पृथ्वी का अस्तित्व ही समाप्त करने की तैयारी कर रखी है । द्रुतगति से बढ़ती हुई जनसंख्या महाविनाश की पूर्व सूचना है । रोकथाम के सारे प्रयत्नों को झुठलाती हुई अपराधों की बाढ़ आ रही है और एक से एक घिनौने क्रूर कर्म देखने–सुनने को मिल रहे हैं । सब मिलाकर स्थिति का पर्यवेक्षण किया जाता है तो लगता है कि बाहर से टिपटॉप दीखते हुए भी मानवता की काया क्षय और कैन्सर रोगों की तरह मरणासन्न स्थिति की ओर तेज़ी से बढ़ रही है ।

इन परिस्थितियों को मनुष्य कृत सामान्य प्रयत्न कदाचित् ही संभाल सकते हैं । प्रगति के लिए प्रयत्नशील नेतृत्व ने हर मोर्चे पर असफलता अनुभव की है और निराशा व्यक्त की है । ऐसे असन्तुलन को सन्तुलन

में बदलने का महान् कार्य सृष्टा की सूक्ष्म चेनता और दिव्य प्रेरणा ही सम्पन्न कर सकती है । यही कार्य इन दिनों हो रहा है । समय की आवश्यकता के अनुरूप महाकाल की प्रचण्ड हलचलें युग अवतार का उद्देश्य पूरा करने के लिए क्रमशः अधिकाधिक प्रखर होती चली जा रही है ।

नवयुग में मानव समाज की आस्थाएँ किस स्तर की हों, किन मान्यताओं से अनुप्राणित हों ? इसका निर्णय-निर्धारण किया जाना चाहिए । मात्र विचार क्षेत्र की अवांछनीयता को हटा देना ही पर्याप्त न होगा । मूढ़ मान्यताओं को हटा देने पर जो रिक्तता उत्पन्न होगी उसकी पूर्ति परिष्कृत अवस्थाओं को ही करनी होगी । स्वास्थ्य, शिक्षा, आजीविका, सुरक्षा जैसी सुविधाएँ आवश्यक तो हैं और उनके उपार्जन अभिवर्धन में किसी को कोई आपत्ति नहीं हो सकती, किन्तु इन साधनों तक ही सीमित रह कर किसी समस्या का समाधान नहीं होता, उसका उपयोग करने वाली चेतना का परिष्कृत होना आवश्यक है अन्यथा बढ़े हुए सुविधा-साधन दुष्ट-बुद्धि के हाथ में पड़कर नई समस्यायें और नई विपत्तियाँ उत्पन्न करेंगे । दुष्ट जब शारीरिक दृष्टि से बलिष्ठ होता है तो क्रूर कर्मों पर उतारू होता है और आततायी जैसा भयंकर बनता है । चतुर और बुद्धिमान होने पर ठगने-सताने के कुचक्र रचता है । धनी होने पर व्यसन और अहंकार के सरंजाम जुटाता है और अपने तथा दूसरों के लिए क्लेश-विद्वेष के सरंजाम खड़े करता है । अन्यान्य कला-कौशल गिराने और लुभाने के लिए प्रयुक्त होते हैं । सुरक्षा सामग्री का उपयोग दुर्बलों के उत्पीड़न में होता है ।

अपने युग की सबसे बड़ी विडम्बना एक ही है कि साधन तो बढ़ते गये किन्तु उनका उपयोग करने वाली अन्तःचेतना का स्तर ऊँचा उठाने के स्थान पर उल्टा-गिरता चला गया । फलतः बढ़ी हुई समृद्धि-उत्थान के लिए प्रयुक्त न हो सकी । आंतरिक भ्रष्टता ने दुष्टता की प्रवृत्तियाँ उत्पन्न कीं और उनके फलस्वरूप विपत्तियो की सवनाशी घटाएँ घिर आयीं । समृद्धि के साथ शालीनता का गुथा रहना आवश्यकता है अन्यथा प्रगति के नाम पर किया गया श्रम दुर्गति की विभीषिकायें ही उत्पन्न करता चला जायेगा ।

व्यक्तित्व की उत्कृष्टता ही मनुष्य की सबसे बड़ी सफलता और सम्पन्नता है, उसी के आधार पर मनुष्य सुसंस्कृत बनता है, आत्म–संतोष, श्रद्धा, सम्मान, जन–सहयोग एवं दैवी अनुग्रह प्राप्त कर सकने में सफल होता है । यही वह तत्व है जिसके सहारे भौतिक जीवन में बढ़ी–चढ़ी उपलब्धियाँ करतलगत होती हैं । साधनों का सही उपार्जन और सही उपयोग भी उसी आधार पर बन पड़ता है, इसके अभाव में इन्द्र और कुबेर जैसे सुविधा–साधन होते हुए भी मनुष्य खिन्न और विपन्न ही बना रहेगा । स्वयं उद्विग्न रहेगा, दुःख सहेगा और समीपवर्ती लोगों के लिए संकट एवं विक्षोभ उत्पन्न करता रहेगा ।

अपने युग की सबसे बड़ी आवश्यकता व्यक्तियों की अन्तः–भूमिका को अधिक सुसंस्कृत और समुन्नत बनाने की है । यह कार्य समृद्धि–सम्वर्धन से अधिक महत्वपूर्ण है । उसकी उपेक्षा की जाती रहेगी तो तथाकथित शीलता पिछड़ेपन से भी अधिक मँहगी पड़ेगी । नवयुग की सुखद परिस्थितियों की संभावना का एक मात्र आधार यही है कि व्यक्ति का अन्तराल उत्कृष्ट बनेगा । दृष्टिकोण में उदारता, चरित्र में शालीनता का समावेश होगा तो निश्चित रूप से वैयक्तिक जीवनक्रम में देवत्व उभरेगा, ऐसे देवमानवों की सामूहिक गतिविधियाँ स्वर्गोपम परिस्थितियाँ उत्पन्न करती हैं । मनुष्य में देवत्व का उदय और धरती पर स्वर्ग के अवतरण का उपहार लाने वाले नवयुग का सारा ढाँचा ही इस आधारशिला पर खड़ा हुआ है कि व्यक्ति का अन्तराल परिष्कृत होना चाहिए । उसे विवेक, चरित्र और व्यवहार की दृष्टि से अधिक उत्कृष्ट होना चाहिए । विकास की सर्वतोमुखी आवश्यकताओं की पूर्ति इसी आधार पर सम्भव है ।

प्रश्न यह उठता है कि अन्तराल को स्पर्श किस उपकरण से किया जाय ? उसे सुधारने के लिए क्या उपाय काम में लाया जाय ? इस दिशा में अब तक दण्ड का भय, पुरस्कार का प्रलोभन और सज्जनता का प्रशिक्षण–यह तीन ही उपाय काम में लाये जाते हैं । किन्तु देखा गया है कि इन तीनों की पहुँच बहुत उथली है, उनसे शरीर और मस्तिष्क पर ही थोड़ा–सा प्रभाव पड़ता है । वह भी इतना उथला होता है कि अन्तराल में जमी आवश्यकताओं का स्तर यदि निकृष्टता का अभ्यस्त और कुसंस्कारी बन चुका है, तो इन ऊपरी उपचारों से व्यक्तित्व का

स्तर बदलने में कोई विशेष सहायता नहीं मिलती । पुलिस, जेल, कठोरता सम्पन्न कानूनों की कमी नहीं । प्रतिरोध और दण्ड व्यवस्था के लिए भी खर्चीला तंत्र मौजूद है, पर देखा जाता है कि मनुष्य की चतुराई इस पकड़ से बच जाने के अनेक तरीके निकाल लेती है । सज्जनता के पुरस्कार पाने में देर लगती है और मात्रा भी थोड़ी होती है । धूर्तता सोचती है कि उससे तो कहीं अधिक कमाई छद्म उपायों के सहारे की जा सकती है । इसी प्रकार नीतिमत्ता के पक्ष में किया गया प्रशिक्षण भी एक प्रकार से बेकार ही चला जाता है । देखा गया है कि अनीति अपनाने वाले भी नीति के सिद्धान्तों का जोर-शोर से समर्थन करते हैं । करनी कुछ भी हो कथनी में अनाचारों की भर्त्सना और आदर्शों की प्रशंसा ही करते पाये जाते हैं । इससे स्पष्ट है कि नीति के पथ में उनका मस्तिष्क पहले से ही प्रशिक्षित है । पढ़े को क्या पढ़ाया जाय ? जागते को क्या जगाया जाय ? शरीर पर लगाये गये बन्धन, मन को दी गई सिखावन अन्य प्रयोजनों में भले ही सफल हो सके, अन्तराल को उत्कृष्टता की दिशा में ले जाने का उद्देश्य बहुत ही सीमित मात्रा में पूरा कर पाते हैं ।

मानवी सत्ता का एक अत्यन्त गुप्त और अत्यन्त प्रकट रहस्य यह है कि व्यक्तित्व की जड़ें आस्थाओं के अन्तराल में रहती हैं । कोई क्या है ? इसे जान्ने के लिए उसका शरीर, मन और वैभव देखने से कुछ भी काम नहीं चलेगा । स्थिति और सामर्थ्य का मूल्यांकन उसके अन्तराल का स्तर जानने के उपरान्त ही हो सकता है । समूची सामर्थ्य उसी केन्द्र में छिपी पड़ी है । आस्था के अनुरूप आकांक्षा उठती है, आकांक्षा की पूर्ति में मस्तिष्क कुशल वकील की तरह बिना उचित-अनुचित की जाँच पड़ताल किए पूरी तत्परता के साथ लग जाता है । मन का गुलाम शरीर है, शरीर वफादार नौकर की तरह अपने मालिक मन की आज्ञा का पालन करने में लगा रहता है । यन्त्र अपने चालक का आज्ञानुवर्ती होता है । शरीर की समस्त हलचलें मन के निर्देश का अनुगमन करती हैं, मन आकांक्षाओं से प्रेरित होता है और आकांक्षाएँ आस्थाओं के अनुरूप उठती हैं । तथ्यतः आस्थाओं का केन्द्र अन्तःकरण ही मानवी सत्ता का सर्वस्व है ।

आस्थाओं का मर्मस्थल अत्यन्त गहरा है । उतनी गहराई तक राजकीय कानून, सामाजिक नियम, तर्क-प्रशिक्षण जैसे उपचार यत्किंचित ही पहुँच पाते हैं । आस्थाओं की प्रबल प्रेरणा इन सब आवरणों को तोड़कर रख देती है । ऐसा न होता तो धर्मोपदेशक धर्म विरोधी आचरण क्यों करते ? लोकसेवा का आवरण ओढ़े सत्ताधारी यों लोक अहित की गतिविधियों में छद्म रूप से निरत रहते । शान्ति और व्यवस्था बनाये रहने के लिए नियुक्त अधिकारी क्यों गुप्त रूप से अपराधी तत्वों के साथ साँठ-गाँठ रखते ? स्पष्ट है कि सारे नियम, प्रतिबन्ध, तर्क और आदर्श एक कोने पर रखे जाते हैं और आस्थाओं में घुसी निकृष्टता अपनी विजय दुन्दुभी बजाती रहती हैं ।

आज की युग विपन्नता के मूल में आस्थाओं का दुर्भिक्ष ही एक मात्र कारण है । इस संकट को कैसे दूर किया जाय ? जब कि प्रभावशाली समझे जाने वाले उपचार भी उस गहराई तक पहुँचने और आवश्यक परिवर्तन प्रस्तुत करने में असमर्थ रहते हैं ।

उत्तर एक ही है कि आस्थाओं के सहारे आस्थाओं का उपचार किया जाये । जंगली हाथी को पालतू हाथी पकड़कर लाते हैं । काँटे से काँटा निकालते हैं और होम्योपैथी प्रतिपादन के अनुसार विष ही विष की औषधि है । उत्कृष्ट आस्थाओं की स्थापना से ही निकृष्ट आस्थाओं का निराकरण होता है । लाठी का जबाव लाठी और घूँसे का जबाव घूँसा वाली उक्ति सर्वविदित है । लोहे को लोहा काटता है । गड्ढे में गिरे हुए को गड्ढे में उतरकर ही निकालना पड़ता है । आस्थाओं में घुसी हुई निकृष्टता का निराकरण उस क्षेत्र में उत्कृष्टता की मान्यताएँ स्थापित करने से ही सम्भव है, व्यक्ति को परिष्कृत करने का प्रमुख उपाय यही है ।

उपासना और साधना का उद्देश्य अन्तःक्षेत्र में उच्चस्तरीय श्रद्धा का आरोपण, परिपोषण एवं अभिवर्धन करना है । शरीर से शरीर लड़ते हैं, विचारों से विचार जूझते हैं और आस्थाओं में आस्थाएँ ही परिवर्तन एवं परिष्कार उत्पन्न करती हैं ।

गायत्री में सन्निहित ब्रह्मविद्या का तत्वज्ञान अन्तःकरण को प्रभावित करके उसमें सत्श्रद्धा का अभिवर्धन करता है । स्वाध्याय, सत्संग, मनन,

चिन्तन जैसी भाव संवेदनाओं को छू सकने वाला प्रशिक्षण ही अन्तरात्मा को बदलने एवं सुधारने में समर्थ हो सकता है । जीव का ब्रह्म से, आत्मा का परमात्मा से, क्षुद्रता का महानता से संयोग करा देना ही योग है । योग का तात्पर्य है–सामान्य को असामान्य से, व्यवहार को आदर्श से जोड़ देना । इस उपचार से आस्थाओं के परिष्कार की आवश्यकता भली प्रकार पूरी हो सकती है । युग परिवर्तन चक्र से जन–जन को अवगत कराया जाना चाहिए । इसके लिए जो भी मानवी पुरुषार्थ किए जायेंगे उनके पीछे महाकाल की प्रचण्ड सामर्थ्य–सहयोग और शक्ति ही आधारभूत भूमिका निभायेगी । वस्तुतः इस तरह के प्रयासों का स्वरूप भले ही मानवी दिखाई दे, पर वह 'महाकाल' की प्रबल प्रेरणाओं का ही अभिनय होगा, जिसके पीछे कठपुतली के खेल में बाजीगर की उँगलियाँ ही परोक्ष रूप से काम करती हैं । युग परिवर्तन के लिए प्रयुक्त होने वाली प्रक्रिया को त्रिविध कहा जा सकता है । उसके तीन पक्ष हैं–पहला तत्वज्ञान, दूसरा प्रयोग विधान और तीसरा देवत्व का अभ्युत्थान । युग परिवर्तन के संदर्भ में त्रिपदा गायत्री के तीन चरणों का यही त्रिविध कार्यक्रम है ।

'तत्वज्ञान' का तात्पर्य है–आत्मशक्ति की विस्मृत और विलुप्त गरिमा से जनसाधारण को परिचित करना । भौतिक साधनों की तुलना में उसकी विशिष्टता तर्क, प्रमाण और अनुभव के आधार पर स्वीकृत करना । समस्त समस्याओं का एकमात्र हल और उज्ज्वल भविष्य का प्रधान आधार आत्म परिष्कार को समझा जाना चाहिए ।

'प्रयोग विधान' का अर्थ है कि गायत्री महाशक्ति के सहारे व्यक्ति के अन्तराल में नव जागृति एवं जीवन्त स्फुरणा का विकसित होना । इसके लिए योगाभ्यास और तप साधना के छोटे–बड़े साधना विधानों का अपनाया जाना, नित्य कर्म की साधारण उपासना से लेकर कुण्डलिनी जागरण और पंचकोशों के अनावरण प्रयोग इसी गणना में आते हैं । भौतिक सिद्धियों और आत्मिक ऋद्धियों का क्षेत्र इन्हीं अभ्यासों में सन्निहित है ।

देवत्व का अभ्युत्थान युग परिवर्तन की विधि–व्यवस्था एवं नवयुग की आचार संहिता का निर्धारण समझा जा सकता है । व्यक्ति की आस्थाएँ

और गतिविधियाँ, समाज की परम्पराएँ और व्यवस्थाएँ क्यों होंगी ? वर्तमान और भविष्य में क्या अन्तर होगा ? इसकी जानकारी एवं तैयारी इसी क्षेत्र में आती है ।

गंगा का अवतरण हिमालय पर हुआ था और उसका विकास–विस्तार आर्यावर्त से लेकर गंगासागर तक हुआ है । गायत्री का अवतरण जनमानस में होगा । आत्म साधना हर व्यक्ति को सर्वप्रमुख और सर्वसुखद कृत्य प्रतीत होगा । इस मार्ग पर चलने वालों का भीतरी और बाहरी स्वरूप ऐसा बन जायेगा जिसे मनुष्य में देवत्व का उदय कहा जा सकेगा । परिष्कृत व्यक्तियों की सामूहिक गतिविधियों में शालीनता का अधिकाधिक समावेश होगा तो परिस्थितियाँ सहज ही ऐसी बनती चली जायेंगी जिन्हें धरती पर स्वर्ग के अवतरण की संज्ञा दी जा सके ।

गायत्री मन्त्र यों संस्कृत भाषा का हिन्दू धर्म में प्रचलित वेदमंत्र है और इस समुदाय में दैनिक उपासना से लेकर आत्मोत्कर्ष की विशेष साधना–तपश्चर्या के काम आता है । यह उसका छोटा–सा प्रयोगात्मक परिचय है । वस्तुतः गायत्री अध्यात्म विद्या की त्रिवेणी है जिसमें प्रकृति के सत्, रज–तम, जीव के सत्यं शिवं सुन्दरम् और ब्रह्म के सत् चित् आनन्द गुणों की दिव्य धाराएँ गुथी हुई हैं । उसका तत्वज्ञान सार्वभौम है, उसके प्रयोग सर्वजनीन हैं, उसका आलोक स्वर्गीय संभावनाओं से भरा–पूरा है । मार्गदर्शन में समूची मनुष्य जाति अपने स्वरूप और भाग्य का नया निर्माण करेगी । भाषा, धर्म, देश आदि की समस्त परिधियों को निरस्त करती हुई युग शक्ति गायत्री प्रस्तुत विभीषिकाओं के निवारण में गंगावतरण द्वारा सगर–पुत्रों के पुनरुद्धार जैसी भूमिका सम्पादित करेगी । इस सुनिश्चित तथ्य को हम सब इन्हीं आँखों से देख सकने में समर्थ होंगे ।

युग अवतरण काल की हलचलों पर दृष्टिपात करने से पता चलता है कि जागृत आत्माओं की उस ईश्वरीय पुण्य प्रयोजन में विशेष भूमिका रही है । युग प्रवाह तो सूक्ष्म होता है । उस आलोक द्वारा अन्तःकरण प्रभावित किए जाते हैं और उमगें उत्पन्न की जाती हैं । महाकाल की भूमिका उस अवसर पर इतनी ही होती है । उस प्रेरणा को क्रियान्वित करना उनका काम रहता है, जिन्हें जीवित, जागृत, विशिष्ट, महामानव स्तर के कहा जाता है । आदर्शों के लिए बढ़–चढ़कर त्याग, बलिदान

करने वाले महामानव ही देवमानव कहलाते हैं । उन्हीं का दुस्साहस सामान्य जन समुदाय में अनुगमन का उत्साह उत्पन्न करता है । अग्रगमन ही कठिन पड़ता है, पीछे चलने वालों का समूह तो साहसिक लोगों को उपलब्ध हो ही जाती है ।

पुराणों में वर्णित अवतार गाथाओं में से प्रायः प्रत्येक के साथ यह प्रसंग जुड़ा हुआ है कि धर्म सन्तुलन बनाने के लिए जब भगवान धरती पर आये तो उनके साथ देव मण्डली भी उस महाभियान में हाथ बँटाने के लिए साथ–साथ आयीं । देवताओं ने पाण्डवों, रीछ–वानरों आदि के रूप में जन्म लिया और साहसिक धर्म सहयोग का उदाहरण उपस्थित करते हुए जनमानस का प्रवाह मोड़ा । आज भी ऐसे देवमानवों की, जागृत आत्माओं की कमी नहीं जो युग अवतरण की इस पुण्य वेला में अपनी भूमिका निभाकर युग गाथा की परम्परा में अपने सहयोग का अध्याय जोड़ेंगे । परिवर्तन की प्रक्रिया को पूर्ण करने के लिए यह उचित भी है और आवश्यक भी है ।

युग परिवर्तन के उपयुक्त वातावरण बनाना होगा

एकाकी प्रयत्न और पुरुषार्थ का महत्व है और उसे सम्मानित प्रोत्साहित किया ही जाना चाहिए । कई बार तो एकाकी प्रयत्न भी इतने प्रचण्ड होते हैं कि वे भी न केवल व्यष्टि सत्ता को वरन् समष्टि सत्ता तक को प्रभावित करने और उलटने तक में बहुत हद तक सफल हो जाते हैं । यों ऐसा यदाकदा ही अपवाद रूप में होता है, पर इससे यह तो पता चलता ही है कि ईश्वर का अंश राजकुमार अपने पिता की समस्त विभूतियाँ साथ लेकर आता है और यदि वह चाहे तो अपनी प्रसुप्ति को जागृति में बदलकर प्रखरता को अपना कर समष्टि क्षेत्र में भी इतना कुछ कर सकता है, जिसे चमत्कारी कहा जा सके । तेजस्वी, मनस्वी, तपस्वी स्तर के व्यक्ति ऐसा ही कुछ कर गुजरते हैं । ऐसी प्रतिभायें महामानवों के रूप में प्रतिष्ठा पाती हैं और अपने असाधारण कर्तृत्व से सामयिक समस्याओं का समाधान करती हैं । अवतारी आत्माएँ

इसी स्तर की होती हैं । युग नेतृत्व कर सकने की विलक्षणता ही उन्हें भगवान स्तर का श्रेय सम्मान प्रदान करती हैं । यह व्यक्ति के चरम उत्कर्ष का उल्लेख होगा ।

इतने पर भी वातावरण की महत्ता अपने स्थान पर यथावत् ही बनी रहती है । उसके प्रभाव की प्रचण्डता पग-पग पर परिलक्षित होती रहती है और आवश्यकता यह भी बनी रहती है कि किसी प्रकार समूचे वातावरण का अनुकूलन सम्भव बनाया जाये । इसके लिए सुनिश्चित उपचार सामूहिक साधना ही जाना और माना जाता रहा है । इन दिनों इन प्रयत्नों को युग शक्ति के उदय-उद्भव का उद्देश्य पूरा करने के लिए प्रयुक्त किया जा रहा है ।

वातावरण का प्रभाव मनुष्यों की आकृति एवं प्रकृति में पाये जाने वाले अन्तर को देखकर जाना जाता है । काले, पीले, सफेद और लाल रंगों की चमड़ी में वातावरण का प्रभाव ही मुख्य है । यह विशेषताएँ रक्तगत मानी जाती हैं किन्तु यह भी स्पष्ट है कि चमड़ी को प्रभावित करने वाली रक्तगत विशेषता अन्ततः विभिन्न देशों और क्षेत्रों में पाई जाने वाली जलवायु की भिन्नता से ही सम्बन्धित है । मनुष्यों के छोटे-बड़े आकार देश और क्षेत्रों के हिसाब से होते हैं । पंजाबी और बंगाली के बीच शरीरों की सुदृढ़ता में जो कमीवेशी रहती है, उसमें वातावरण के प्रभाव को प्रत्यक्ष देखा जा सकता है । रूस के उजबेकिस्तान प्रान्त में अधिकांश व्यक्ति शतायु होते हैं । उनके आहार-विहार में, सुविधा-साधनों में कोई खास विशेषता नहीं होती । अन्यत्र रहने वालों की तरह वे भी मोटा-झोटा खाते और औसत जिन्दगी जीते हैं । फिर सारे क्षेत्र में दीर्घायु की परम्परा किस कारण चली आ रही है ? इसका उत्तर वातावरण की विशेषता को समझने से ही मिल सकता है ।

न केवल शरीरों में वरन् स्वभावों में भी विशेष अन्तर देखा जाता है । यह सूक्ष्म या स्थूल वातावरण का ही प्रभाव है । संस्कृति-सभ्यता आदि की भिन्नताएँ इसी आधार पर विभाजित होती हैं कि किस क्षेत्र के लोगों की मान्यता, अभिरुचि एवं आदत किस ढाँचे में ढल गई हैं और उन लोगों की विचारणा एवं गतिविधि किस दिशा में प्रवाहित हो रही हैं ? यह प्रवाह सहज ही बदलते भी नहीं, इसलिए उन्हें संस्कृति की भिन्नता

के रूप में मान्यता दे दी जाती है और उसका परिपोषण भी होता है। यह विशेषताएँ न केवल स्वभावों में वरन् चरित्रों और आदर्शों में भी झलकती दीख पड़ती हैं।

पशुओं, वनस्पतियों और खनिज पदार्थों तक में वातावरण की भिन्नता के आधार पर उनके स्तर का परिचय मिलता है। एक देश के पशुओं की दूसरे देश के पशुओं से तुलना में न केवल आकृति में अन्तर पड़ जाता है वरन् उनकी श्रमशक्ति, दूध देने आदि की क्षमताओं में भी अन्तर होता है। भेड़ों की ऊन में पाई जाने वाली भिन्नताएँ उन क्षेत्रों के वातावरण से सम्बन्धित होती हैं। पहाड़ी कुत्ते और देशी कुत्तों में काफी प्रकृति भिन्नता आ जाती है। ऋतु प्रभाव सहन करने की क्षमता भी उस क्षेत्र पर छाई रहने वाली सूक्ष्म विशेषताओं से ही सम्बन्धित होती है। सर्दी वाले इलाकों में जन्मे प्राणी सर्दी की और गर्म देशों के निवासी गर्मी की अधिकता को भी शांतिपूर्वक सहन कर लेते हैं, जबकि भिन्न परिस्थितियों में जन्म लेने वालों के लिए परिवर्तन के साथ तालमेल बिठाना कठिन पड़ता है। तेज वाहनों पर सफर करने वाले अक्सर स्वास्थ्य में गड़बड़ी पड़ने की शिकायत करते रहते हैं। इसका कारण वातावरण में परिवर्तन की तीव्रता का शरीर की सहन-शक्ति के साथ ठीक तरह तालमेल न बैठ सकना ही होता है।

जड़ी-बूटियाँ, घास-वनस्पतियाँ, फल-फूल आदि के आकार, गन्ध, स्वाद आदि में अन्तर पाया जाता है। विभिन्न क्षेत्र में उत्पन्न हुई औषधियों का नाम-रूप एक होने पर भी उनके रसायनों और गुणों में असाधारण अन्तर दीख पड़ता है। पक्षियों से लेकर कीड़े-मकोड़ों तक की आकृति-प्रकृति में अन्तर देखा गया है। साँप, बिच्छू, छिपकली, मकड़ी आदि के विषों में पाया जाने वाला अन्तर यों दीखता तो जातिगत है पर वे जातिगत विशेषताएँ भी मूलतया वातावरण की ही प्रतिक्रिया होती हैं।

अनेक देशों की परिस्थितियाँ, प्रथायें, और मान्यताएँ, रुचियाँ और संस्कृतियाँ भिन्न-भिन्न होती हैं। उनमें जो बालक उत्पन्न होते हैं वे वातावरण के प्रभाव से उसी प्रकार की मनोवृत्ति और प्रकृति अपनाते चले जाते हैं। उनके चिंतन, स्वभाव और क्रिया-कलाप लगभग वैसे ही होते हैं जैसे कि उस प्रदेश में रहने वाले लोगों के। बहुमत का दबाव पड़ता है तो

अल्पमत अनायास ही बहुतों का अनुकरण करने लगता है । समय का प्रभाव, युग का प्रवाह इसी को कहते हैं । सर्दी–गर्मी का मौसम बदलने पर प्राणियों के, वनस्पतियों के तथा पदार्थों के रंग–ढंग ही बदल जाते हैं । गतिविधियों में ऋतु के अनुकूल बहुत कुछ परिवर्तन होते हैं ।

विज्ञानवेत्ता जानते हैं कि पृथ्वी पर जो कुछ विद्यमान है और उत्पन्न–उपलब्ध होता है वह सब अनायास ही नहीं है और न उस सबको मानवी उपार्जन कह सकते हैं । यहाँ ऐसा बहुत कुछ होता रहता है, जिसमें मनुष्य का नहीं वरन् सूक्ष्मशक्तियों का हाथ होता है सूर्य पर दीखने वाले धब्बे उसकी स्थिति के अनुसार बदलते रहते हैं, उस परिवर्तन का पृथ्वी पर भारी असर पड़ता है । उनसे पदार्थों की स्थिति और प्राणियों की परिस्थिति में आश्चर्यजनक हेरफेर होते हैं । विकिरण, चुम्बकीय, तूफान–अन्धड़, चक्रवात किस प्रकार सामान्य परिस्थितियों को असामान्य बनाते हैं–यह सभी जानते हैं । अन्तरिक्षीय अदृश्य शक्ति वर्षा से कई बार धरती पर हिमयुग आये हैं । जलप्लावन, समुद्री परिवर्तन और खण्ड प्रलय के दृश्य उपस्थित हुए हैं, भविष्य में पृथ्वी के पदार्थों अथवा प्राणियों की स्थिति में कोई असाधारण परिवर्तन हुआ तो उसका निमित्त कारण सामान्य घटनाक्रमों में नहीं वरन् अन्तरिक्षीय अदृश्य हलचलों में ही पाया जायेगा । अतिवृष्टि, अनावृष्टि, शीताधिक्य, महामारी आदि आधिदैविक विपत्तियों में मनुष्य अपने आपको निर्दोष एवं असहाय ही अनुभव करता है ।

व्यक्ति अपने निजी जीवन में सर्वथा स्वतंत्र और सशक्त है । इतना होते हुए भी विशाल ब्रह्माण्ड में गतिशील हलचलों और परिस्थितियों में उसका स्थान नगण्य है । सिर पर खड़े पानी से लदे बादल तक को वह बरसा नहीं सकता, मौत और बुढ़ापे को रोकने तक में असमर्थ है । परिस्थितियों पर उसका अधिकार नगण्य है । प्रवाहों से वह अपना यत्किंचित बचाव ही कर पाता है । सर्दी उसके बूते रुकती नहीं । कपड़े लादकर, आग ताप कर आत्म–रक्षा भर में आंशिक सफलता पा लेता है ।

स्पष्ट है कि वातावरण से मनुष्य प्रभावित होता है । अलग–अलग देशों के निवासी अपनी–अपनी परम्पराओं से प्रभावित होते, प्रचलित ढर्रे के अन्तर्गत सोचते और जीवनयापन करते हैं । उसमें उनकी भौतिक

प्रतिभा का नहीं वातावरण का प्रभाव ही प्रधान रूप से काम करता है ।

मनुष्य का व्यक्तिगत जीवन ही नहीं सामाजिक व्यवस्था भी वातावरण से प्रभावित होती है । सर्दी-गर्मी की लहर की तरह कई बार भावनात्मक एवं विचारात्मक लहरें भी उठती हैं । जब कभी युद्धोन्माद आदि उभरते हैं उन दिनों अशिकांश लोग लड़ने की आवश्यकता अनुभव करते और उसके लिए उतारू से दीखते हैं । एक अजीव-सा आवेश छाया रहता है, न कहने की आवश्यकता पड़ती है, न समझाने की । हवा में तेजी और गर्मी ही कुछ ऐसी होती है जिसके कारण सामान्य मस्तिष्क एक प्रकार से सम्मोहन स्थिति में रहता और प्रवाह में बहता दिखाई पड़ता है । बड़े युद्धोन्माद एवं स्थानीय दंगे-फसादों में वातावरण जिस प्रकार उत्तेजित-आतंकित होता है, उसे जन मनोवृत्ति, शास्त्र के अध्येता भली प्रकार जानते हैं । युद्धोन्माद की तरह ही समय-समय पर दूसरे सूक्ष्म प्रवाह भी अपने-अपने समय पर उतरते रहे हैं और असंख्य मस्तिष्कों को अपने साथ बहा ले जाने में आँधी-तूफान का काम करते रहे हैं ।

प्रजातंत्र की लहर एक समय चली और उसने राजतन्त्र को संसार भर से उखाड़ फेंकने और उसके स्थान पर जनवादी सरकार बनाने का चमत्कार ही उत्पन्न कर दिया । एक लहर साम्यवाद की उठी, उसने रूस के नेतृत्व में एशिया और योरोप के अनेक देशों को देखते-देखते अपना अनुचर बना लिया । इन दिनों संसार भर के मनुष्यों में से प्रायः आधे लोग साम्यवादी विचारधारा के पक्ष में सोचते और उसको पूरा या अधूरा समर्थन देते हैं । इन प्रजातंत्र और साम्यवाद के विचार प्रवाहों को अपने युग की प्रचण्ड लहरों में गिन सकते हैं । अनुपयोगी लहरों में से अधिनायकवाद, जातिवाद, पूँजीवाद, साम्राज्यवाद, सामन्तवाद आदि भी समय-सम्य पर अपना सिर उठाते और विग्रह उत्पन्न करते रहे हैं । लहर तो लहर ही है । ज्वार-भाटा की भयंकरता समुद्र तटवासी समय-समय पर देखते रहते हैं । कई तरह के विचार प्रवाह भी कई बार ऐसे आते हैं जो अपने साथ असंख्यों को समेटकर-घसीटकर कहीं से कहीं उठाकर उड़ाकर ले जाते हैं ।

भगवान बुद्ध का धर्मचक्र प्रवर्तन साधन प्रधान नहीं प्रवाह प्रधान

था, साधनों ने प्रवाह उत्पन्न नहीं किया था । प्रवाह ने साधन खड़े कर दिये थे । हर्षवर्धन—अशोक आदि राजाओं ने मिलकर बुद्ध और धर्म प्रचारक नियुक्त नहीं किए थे । बुद्ध ने ही हवा गरम की थी और उसकी गर्मी से लाखों सुविज्ञ, सुयोग्य और सुसम्पन्न व्यक्ति अपनी आत्माहुति देते हुए चीवरधारी धर्म सैनिकों की पंक्ति में अनायास ही आ खड़े हुए थे । धर्म प्रवर्तकों में से प्रत्येक ने अपने समय में अपने ढंग से वातावरण को गरम करके अपने समर्थन की भाव—तरंगें उत्पन्न की हैं और उस प्रवाह में असंख्य व्यक्ति बहते चले गये हैं । पराधीनता के पाश से मुक्त होने वाले देशों में भी आजादी की लहर बही और उसके कारण अनगढ़ ढंग से आन्दोलन फूटे तथा अपने लक्ष्य पर पहुँचकर रहे । अदृश्य और सूक्ष्म वातावरण के तथ्य—रहस्य को जो लोग जानते हैं, वे समझते हैं कि इसके प्रवाह कितने सामर्थ्यवान होते हैं । उनकी तुलना संसार की अन्य शक्ति से नहीं हो सकती । रामायणकाल के वानरों द्वारा जान हथेली पर रखकर जलती आग में कूद पड़ना, जिस प्रवाह की प्रेरणा से सम्भव हुआ उसका स्वरूप और महत्त्व यदि समझा जा सके तो प्रतीत होगा कि जन—समुदाय को किसी दिशा विशेष में घसीट ले जाने की सामर्थ्य सूक्ष्म वातावरण में भी इतनी है जिसे साधनों के सहारे खड़े किए गये आन्दोलनों से कम नहीं अधिक शक्तिवान ही माना जा सकता है ।

जन—समर्थन और जन—सहयोग के लिए प्रचार साधनों पर उतना निर्भर नहीं रहा जा सकता जितना कि वातावरण के अनुकूलन पर । सूक्ष्म जगत का प्रवाह यदि सहयोगी बन रहा हो तो अभीष्ट प्रयोजन में सफलता प्राप्त करने की संभावना कहीं अधिक बढ़ जाती है । हवा का रुख पीठ पीछे से हो तो जलयानों—वायुयानों से लेकर पैदल यात्रा तक में कितनी सुविधा होती है और मार्ग कितनी जल्दी, कितनी सरलता से पूरा हो जाता है । वातावरण में विषाक्तता छा जाती है तो भयंकर महामारियों का प्रकोप होता है और देखते—देखते असंख्यों उससे आक्रांत होते, मरते देखे जाते हैं । वातावरण में सर्दी—गर्मी होने से प्राणियों को काँपते और आकुल—व्याकुल होते देखा जा सकता है । घर में शोक का वातावरण हो तो असंबद्ध लोग भी उससे प्रभावित होते हैं । मन्दिरों और कसाईघरों के वातावरण का अन्तर प्रत्यक्ष देखा जा सकता है ।

अध्यात्म विद्या में सूक्ष्म जगत का, सूक्ष्म वातावरण का महत्त्व इस संसार के समस्त साधनों से सर्वोपरि माना गया है । युग परिवर्तन के लिए हमें वातावरण के अनुकूलन के लिए आध्यात्म विज्ञान के अनुरूप प्रचण्ड प्रयास करने होंगे । वातावरण से मनुष्य प्रभावित होते हैं, यह सत्य हे । इसके साथ यह भी सत्य है कि प्रखर व्यक्तित्व वातावरण को भी प्रभावित कर लेने की क्षमता रखते हैं । ओजस्वी, मनस्वी और तपस्वी स्तर की प्रतिभायें अपनी प्रचण्ड प्राण ऊर्जा से वातावरण को गरम करती हैं और गर्मी से परिस्थितियों के प्रवाह में असाधारण मोड़ आते और परिवर्तन होते देखे गये हैं । इस तथ्य से भिन्न प्रतीत होने वाला एक और भी सत्य है कि वातावरण से व्यक्ति प्रभावित होता है । समय के प्रभाव में तिनकों और पत्तों की तरह अगणित व्यक्ति बहते चले जाते हैं । आँधी के साथ धूलि से लेकर छत–छप्परों तक न जाने क्या–क्या उड़ता चला जाता है । आँधी का रुख जिधर होता है उधर ही पेड़ों की डालियाँ और पौधों की कमर झुकी दिखाई पड़ती है, इसे प्रवाह का दबाव ही कह सकते हैं ।

युग परिवर्तन के दोनों ही पक्ष हैं । तपस्वी व्यक्ति अपनी प्रचण्ड आत्मशक्ति से वातावरण को प्रभावित करते हैं और अभीष्ट परिवर्तन के लिए व्यापक अनुकूलता उत्पन्न करते हैं । दूसरा पक्ष यह है कि विशिष्ट उपायों के द्वारा वातावरण में गर्मी उत्पन्न की जाती है और उस व्यापक प्रखरता के दबाव से सब कुछ सहज ही बदलता चला जाता है । इन दोनों पक्षों में से कौन प्रधान है कौन गौण ? इस पर चर्चा करना व्यर्थ है । हमें यही मानकर चलना होगा कि दोनों ही तथ्य अपने स्थान पर अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं और दोनों की ही उपयोगिता है । दोनों को परस्पर पूरक भी कह सकते हैं । युग सृजेताओं को इन दोनों के ही परिपोषण में संलग्न रहना है ।

युग परिवर्तन की ऊर्जा उत्पन्न करने वाले व्यक्तित्व का निर्माण तपश्चर्या के माध्यम से ही हो सकता है । भौतिक प्रतिभाओं के धनी भी कई प्रकार की सफलताएँ उत्पन्न करते देखे गये हैं किन्तु वे सभी होते पदार्थपरक ही हैं । मनुष्य की शारीरिक, बौद्धिक क्षमताऐं साधनों की सुविधा–सम्पदायें कितने ही महत्त्वपूर्ण कार्य सम्पन्न करती देखी गई हैं, पर

वे सभी होती जागतिक ही हैं । धन के आधार पर विशालकाय भवन और कल-कारखाने खड़े किए जा सकते हैं । सुविधा-साधन बढ़ाने के कितने ही अन्य आधारों का सरंजाम जुटाया जा सकता है । समस्याओं का सामयिक समाधान करने वाले दबाव भी शक्ति सामर्थ्य के सहारे उत्पन्न किये जाते हैं । विज्ञान, अर्थसाधन, बुद्धि-कौशल एवं परिश्रम के सहारे सुविधा-सम्वर्धन की व्यवस्था बनती आई है और यह क्रम भविष्य में चलता रहने वाला है । इस दृष्टि से भौतिक साधनों और सामर्थ्यों का महत्व सदा ही स्वीकार किया जाता रहेगा । इतने पर भी यह यथार्थता अपने स्थान पर अटल ही बनी रहेगी कि मनुष्य की अन्तःचेतना का स्पर्श करने, विशेषतः उसे उत्कृष्टता की दिशा में अग्रसर करने की आवश्यकता साधन-सामग्री के सहारे पूरी हो नहीं सकती । चेतना मात्र चेतना से ही प्रभावित होती है, उसे प्रशिक्षित और उल्लसित करने के लिए भावनात्मक आधार चाहिए । साधनों से तो मस्तिष्क को प्रभावित और शरीर को उत्तेजित भर किया जा सकता है ।

इतिहास साक्षी है आंतरिक उत्कृष्टता के धनी व्यक्तियों ने अपनी अन्तःऊर्जा के सहारे अपने समय के अगणित मनुष्यों को प्रभावित किया है । ईसा, बुद्ध, शंकराचार्य, विवेकानन्द, गाँधी जैसे महामानवों ने अपने अन्तःकरणों को तोड़ा-मरोड़ा और ढाला-गलाया था । सामयिक विकृतियों को सुधारने में उन महान व्यक्तित्वों ने एक प्रकार से चमत्कार उपस्थित करके रख दिया था । एक अग्रगामी के पीछे अनुगामियों के जत्थे गतिशील होते रहे हैं । राणा प्रताप, गुरु गोविन्दसिंह जैसी हस्तियाँ साधनहीन परिस्थितियों में भी साधन जुटाने में समर्थ होती रही हैं । यह व्यक्ति के अन्तराल में उभरने वाली आत्मशक्ति का वर्चस्व है । नवयुग के अवतरण में तपश्चर्या की ऐसी परम्परा को विकसित किया जाना है जिसके सहारे आत्मबल के धनी महामानवों की संख्या बढ़ सके । जनमानस को उत्कृष्टता अपनाने के लिए सहमत कर सकना केवल ऐसे ही लोगों का काम है । स्वार्थों की पूर्ति के लिए उत्तेजित और प्रशिक्षित कर सकना तो भौतिक प्रतिभाओं के लिए भी सरल है किन्तु आदर्शवादिता को व्यवहार में उतारना और उसके लिए त्याग बलिदान के लिए प्रबल प्रेरणा दे सकना तपःपूत आत्माओं के लिए ही सम्भव हो सकता है । युग विकृतियों से

जूझने के लिए इन्हीं ऊर्जा आयुधों की आवश्यकता पड़ेगी । अणुबमों के विस्फोट जैसी प्रचण्डता यदि सृजन प्रयोजनों के लिए अभीष्ट हो तो उसके लिए व्यक्तित्व को तपश्चर्या की शक्ति से सम्पन्न करने के अतिरिक्त और कोई मार्ग नहीं है । सृजन के लिए भागीरथों की और ध्वंस के लिए दधीचियों की आवश्यकता की पूर्ति के लिए गायत्री उपासना के सामान्य उपचारों से लेकर उच्चस्तरीय तप-साधना तक का विशालकाय आधार खड़ा किया जा रहा है ।

तथ्यों के जानने वाले जानते हैं कि प्रस्तुत शताब्दी में रचे गये स्वतंत्रता संग्राम के लिए सूक्ष्म वातावरण में आवश्यक रुचि उत्पन्न करने के लिए योगी अरविन्द जैसे तपस्वियों की कितनी बड़ी पृष्ठभूमि रही है । असहयोग, सत्याग्रह से लेकर 'करो या मरो' तक के संघर्षों के लिए अगणित लोगों को, प्राण हथेली पर रखकर बलिदानियों की सेनायें ला खड़े करना एक चमत्कार ही कहा जा सकता है । हजार वर्ष से दवा-कुचला जनमानस एकाकी इतने आवेश के साथ आत्मगौरव की रक्षा के लिए आतुर हो उठे और संकल्प को पूरा करने के लिए बहुत कुछ कर गुजरे तो उसे अद्भुत ही कहा जायेगा । एक ही समय में अनेकों महामानवों का उदय एक साथ हुआ हो ऐसे उदाहरण अन्यत्र ढूँढ़े नहीं मिलते । नेता और योद्धा तो एक साथ कितने ही हो सकते हैं, पर भारतमाता ने उन्हीं दिनों ढेरों महामानव उत्पन्न करके रख दिये । इस उत्पादन के पीछे किन्हीं जादूगरों की करामात काम करती देखी जा सकती है । निश्चय ही वह उत्पादन ज्ञात और अविज्ञात तप-साधनाओं का ही प्रतिफल था । ऊर्जा उत्पादन के वे स्रोत इन दिनों शिथिल हो गये तो राष्ट्र-निर्माण के कार्य में वैसी ही तत्परता का परिचय देने वाली विभूतियों का ढूँढ़ निकालना भी कठिन हो रहा है । तप शक्ति का, लोकचेतना को ऊँचा उछालने में कितना बड़ा योगदान हो सकता है उसे आज नहीं तो कल एक सुनिश्चित तथ्य की तरह समझ सकना हम सभी के लिए सम्भव हो जायेगा ।

यह व्यक्ति की आत्म-ऊर्जा को विकसित करनें और उसके द्वारा वातावरण को परिष्कृत करने का एक पक्ष हुआ । युग परिवर्तन के लिए इन प्रयत्नों में तत्परतापूर्वक संलग्न रहने की आवश्यकता रहेगी ।

युग सृजेताओं को उस उपार्जन–उत्पादन के लिए तत्परतापूर्वक प्रयत्नरत रहना होगा । दूसरा पक्ष है वातावरण को सामूहिक प्रयत्नों से प्रभावित करना और उसके तूफानी प्रवाह में सामान्यजनों को भी असामान्य भूमिका सम्पादन करने के लिए उत्तेजित करना । यह पक्ष सामूहिक प्रयत्नों से ही सम्पन्न हो सकता है । एकाकी व्यक्तिगत प्रयत्नों से तो कार्य सीमित क्षेत्र में, सीमित मात्रा में और सीमित समय तक के लिए ही सम्पन्न हो सकता है । व्यापक परिमाण में बड़े प्रयत्न चिरस्थाई उद्‌देश्य के लिए करने हों तो उसके लिए सामूहिक प्रयासों की आवश्यकता होगी जो आध्यात्मिकता की उमंगों से सूक्ष्म जगत को भर सकने में समर्थ हो सकें ।

प्राचीन काल में यह प्रयोजन सप्त–ऋषियों की सुगठित मण्डली द्वारा सम्पन्न होते रहे हैं । उनके शरीर तो अलग–अलग थे, पर रहते साथ–साथ थे । जो सोचते थे, जो योजना बनाते थे और जो करते थे उसमें सघन एकता रहती थी । वैसे ही जैसी की सप्त–धातुओं के सम्मिलन से काय–कलेवर का ढाँचा खड़ा होता और गतिशील रहता है । अभी भी वे आकाश में एक मण्डली के रूप में चमकते और कदम से कदम मिलाकर साथ–साथ चलते हैं । दिवंगत होने पर भी उनकी एकता में कोई शिथिलता नहीं आई है । सामूहिक सत्प्रयत्नों का मूल्य और महत्त्व वे भली प्रकार समझते हैं, इसमें किसी प्रकार का व्यतिरेक कभी न आने देने के लिए वे कृतसंकल्प हैं ।

देवताओं का सहकार उनकी पूजा के लिए स्थापित की गई उपचार वेदियों को देखकर जाना जा सकता है । सर्वतोभद्र आदि स्थापनाओं में सहनिवास की उनकी मूल प्रवृत्ति का परिचय मिलता है । एक ही जल कलश में उन सबका आह्वान और प्रतिष्ठापन सम्पन्न हो जाता है । भगवती दुर्गा तो देवताओं की संघशक्ति का प्रतीक–परिचय ही मानी जाती हैं ।

देव प्रयोजनों में सामूहिकता का ही प्रावधान है । यज्ञ प्रक्रिया सनातन है, देवाराधन के समस्त तत्वों का उसमें समावेश है । प्रत्यक्ष है कि यज्ञ का समूचा क्रिया–कलाप सामूहिकता पर अवलम्बित है । ब्रह्मा, आचार्य, अध्वर्यु, उद्‌गाता, यजमान, ऋत्वाक् आदि पदाधिकारियों की मण्डली उसका सूत्र संचालन करती है । आहुति देने वाले, परिक्रमा करने वाले, श्रमदानी,

संयोजक, सहयोगी, व्यवस्थापक आदि का जितना बड़ा समुदाय होगा आयोजन की उतनी ही बड़ी सफलता मानी जाती है । राजनैतिक उद्देश्यों के लिए राजसूय यज्ञों और धार्मिक उद्देश्यों के लिए बाजपेय यज्ञों की परम्परा रही है । अश्वमेध जैसे आयोजन राजसूय और गायत्री यज्ञ जैसे आयोजन बाजपेय कहलाते रहे हैं । इनमें राजनेताओं एवं धर्मवित्ताओं को बड़ी संख्या में एकत्रित करके उनकी विचारणाओं एवं गतिविधियों में सामयिक उद्देश्यों की पूर्ति के लिए किए जाने वाले प्रयत्नों में एकता, एकरूपता लाने का प्रयोजन पूरा किया जाता रहा है । नैमिषारण्य आदि आरण्यकों में सूत-शौनक कथा-प्रसंगों जैसे विशालकाय ज्ञान सत्र सम्पन्न होते थे और उनमें हजारों ऋषि आत्माएँ श्रद्धापूर्वक भाग लेती थीं ।

कुम्भ जैसे महापर्वों के समय होने वाले विशालकाय धर्म सम्मेलनों का उद्देश्य भी एक ही था-श्रेष्ठ व्यक्तियों का सत्प्रयोजनों के लिए सघन सहकार और सामूहिक प्रयत्न । कथा-कीर्तन, पर्व-संस्कार, सत्र-सत्संग, परिक्रमा, तीर्थयात्रा जैसे धर्मानुष्ठानों में अन्य उद्देश्यों के साथ-साथ एक अति महत्वपूर्ण प्रयोजन यह भी सम्मिलित है कि सदाशयता को संघबद्ध होने और एक दिशाधारा में चल पड़ने की व्यवस्था बन सके ।

ऋषियों ने रावणकालीन अनाचार से जूझने के लिए, सूक्ष्मशक्ति उत्पन्न करने के लिए सामूहिक अध्यात्म उपचार किया था । सबने मिल-जुलकर अपना-अपना रक्त संचय किया और उसे एक घड़े में बन्द करके भूमि में गाड़ दिया, उसी से सीता उत्पन्न हुई और उनकी भूमिका के फलस्वरूप तत्कालीन अनाचारों का निराकरण सम्भव हो सका ।

महत्व तो व्यक्तिगत उपासना का भी है और वैयक्तिक परिष्कार के लिए अलग-अलग एकान्त उपासना की भी आवश्यकता रहती ही है किन्तु समष्टिगत व्यापक प्रयोजनों के लिए सम्मिलित उपासना के अतिरिक्त और कोई चारा नहीं । भौतिक उद्देश्यों की पूर्ति भौतिक साधनों से हो सकती है किन्तु सूक्ष्म जगत को प्रभावित करने के लिए अध्यात्म पुरुषार्थ की आवश्यकता पड़ती है । वह एकाकी तो चलना ही चाहिए, पर उसे सामूहिक स्तर का भी बनाया जाना चाहिए ।

आये दिन देखा जाता है कि एकाकी और सम्मिलित शक्ति में

कितना अन्तर पड़ता है । बुहारी की अलग-अलग सीकें चाहें हजारों-लाखों ही क्यों न हों अलग-अलग रहकर किसी भवन को बुहार न सकेंगी । सीकें सम्मिलित हों तो समर्थ झाड़ू बनेगी । धागे परस्पर गुथे हों तो कपड़ा बनेगा और तन ढकेगा । अलग दीपक तो सदा ही जलते हैं, जब वे योजनाबद्ध रूप में नियत समय पर पंक्तिबद्ध प्रकाशित होते हैं तो दीपावली का उत्सव दृष्टिगोचर होता है । अलग-अलग रहकर शूरवीर योद्धा का कोई बड़ा प्रयोजन पूरा नहीं होता है, उनका सम्मिलित स्वरूप-सेना का प्रदर्शन ही प्रभावशाली होता है और पराक्रम भी सफल होता है । सामूहिक और सुगठित उपासना के विशालकाय आयोजन वातावरण को बदलने और सुधारने का सुविस्तृत उद्देश्य पूरा करते हैं । युग परिवर्तन जैसे महान् कार्य में सूक्ष्म जगत का परिशोधन-वातावरण का अनुकूलन भी एक बड़ा तथ्य है, इसके लिए युग शक्ति का उदय आवश्यक है-यह सामूहिक उपासना के सुनियोजित सुसंस्कारित साधना-अनुष्ठानों से ही सम्भव हो सकता है ।

सूक्ष्म वातावरण का परिशोधन करने के लिए अध्यात्म विज्ञानियों द्वारा कतिपय दिव्य उपचार समय-समय पर किए गये हैं । इसके प्रमाण शास्त्रों में मिलते हैं । रावणकाल के विक्षुब्ध वातावरण को समाहित करने का कार्य लंका विजय के उपरान्त भी शेष रह गया था । भगवान राम ने दशाश्वमेध घाट पर दश अश्वमेधों की संकल्प श्रृंखला पूरी की थी । कंस, दुर्योधन, जरासन्ध जैसे असुरों के न रहने पर भी महाभारत काल के विक्षोभ वातावरण में भरे रहे । भगवान कृष्ण ने उनका समाधान आवश्यक समझा और पाण्डवों से राजसूय यज्ञ कराया । महर्षि विश्वामित्र अपने समय की असुरता को दुर्बल बनाने के लिए जो वृहद् यज्ञ रच रहे थे उसका पता असुरों को चल गया और वे ताड़का, सुबाहु, मारीच के नेतृत्व में उसे नष्ट करने के लिए आक्रमण करने लगे । राम और लक्ष्मण को यज्ञ की रक्षा के लिए जाना पड़ा था । ऐसे समाधान-उपचारों में यज्ञ प्रक्रिया का बहुत महत्व रहा है । यज्ञों में अग्निहोत्र की तरह ही जप-यज्ञ भी है । अग्निहोत्र में साधन चाहिए, पर जप यज्ञ व्यक्तिगत साधना से भी सम्पन्न हो सकता है । यज्ञ तो सामूहिक होते हैं, उनमें होताओं की सम्मिलित साधना का चमत्कार देखने को मिलता है । जप-यज्ञ को जब अनेक जपकर्त्ता संकल्पपूर्वक

समाहित होकर करते हैं तो उससे भी सम्मिलित शक्ति उत्पन्न होती है । ऐसी सामूहिक साधनाएँ पुरश्चरण कहलाती हैं । तपश्चर्यायुक्त सामूहिक संकल्पों के द्वारा विशिष्ट उद्देश्यों के लिए किए गये पुरश्चरण भी वातावरण में अभीष्ट अनुकूलता उत्पन्न करते हैं ।

तत्वदर्शी ऋषियों ने उपासना विज्ञान के निर्धारण में इस तथ्य का भी ध्यान रखा है कि नियत समय, नियत क्रम से, नियत विधि–व्यवस्था और निर्धारित मनोभूमि की व्यवस्था बनाकर उपासना की जाये और उससे सूक्ष्म जगत का उद्देश्य पूरा होता रहे । सूर्योदय और सूर्यास्त काल को ही संध्यावन्दन के लिए क्यों निर्धारित किया गया ? उसका एक ही उत्तर है कि इससे संयुक्त शक्ति की अत्यन्त प्रभावशाली प्रचण्ड धारा उत्पन्न होती है । किसी भारी वजन को उठाने के लिए मजदूरों की बड़ी संख्या भी अलग–अलग स्तर की खींचतान करती रहे तो बोझ उठाना, पहिया घुमाना कठिन पड़ता है, पर जब एक साथ, एक आवाज के साथ, एक प्रोत्साहन देकर एक जोश उत्पन्न करके 'जोर लगाओ हेईशा' जैसे नारे लगाते हुए सबका बल एक ही समय, एक ही कार्य पर नियोजित कर दिया जाता है तो शक्ति का केन्द्रीकरण चमत्कारी परिणाम प्रस्तुत करता है और रुकी हुई गाड़ी सहज ही आगे बढ़ जाती है ।

सामूहिक नियोजन के परिणाम पग–पग पर परिलक्षित होते हैं । सैनिकों के कदम मिलाकर चलने से उत्पन्न ताल यों लगती तो साधारण–सी है, पर उसका वास्तविक प्रभाव तब दिखाई पड़ता है जब वे सैनिक किसी पुल पर कदम मिलाकर चलें । उस पदचाप की आवाज में संयुक्त ताल होने के कारण ध्वनि तरंगों की प्रचण्डता असाधारण बन पड़ती है उससे पुलों के फट जाने का खतरा उत्पन्न हो जाता है ।

संयुक्त उपासना की प्रचण्ड प्रतिक्रिया का तथ्य तत्वदर्शियों के ध्यान में सदा ही रहा है । विभिन्न धर्मों में प्रचलित उपासनाओं को सामूहिकता की श्रृंखला में बाँधा गया है । मुसलमानों की नमाज के समय यही नियम है और उसे कड़ाई के साथ पालन करने पर जोर दिया गया है । अन्यान्य धर्मों में भी यह व्यवस्था अपने–अपने ढंग से मौजूद है ।

युग परिवर्तन के लिए गायत्री उपासना सामूहिक रूप में नियत नियंत्रण और समर्थ मार्गदर्शन में चल रही है, उसे युग शक्तिका प्रचण्ड

उत्पादन समझा जा सकता है और उसके आधार पर सूक्ष्म जगत के अदृश्य वातावरण के अनुकूलन की अपेक्षा की जा सकती है ।

युग परिवर्तन संसार का सबसे बड़ा, सबसे भारी, सबसे व्यापक और सबसे अधिक महत्व का काम है । उसके लिए सामान्य और सीमित नहीं असामान्य और असीम शक्ति चाहिए । भौतिक साधनों की भी इसके लिए आवश्यकता पड़ेगी, पर शक्ति का मूल स्रोत आध्यात्मिक ही होगा । जनमानस का बदलना विशुद्ध रूप से आध्यात्मिक क्षेत्र का कार्य है, इसलिए ऊर्जा भी उसी स्तर की चाहिए । वातावरण की उत्कृष्टता–निकृष्टता सामूहिक चिन्तन पर निर्भर करती है । उसका उत्पादन सामूहिक साधना के प्रचण्ड, सामर्थ्य–सम्पन्न सामूहिक धर्मानुष्ठानों से ही सम्भव है । हम सब इन दिनों इसी के लिए प्रयत्नशील हैं । आशा की जा सकती है कि इन पुण्य प्रयत्नों की प्रतिक्रिया युग परिवर्तन के महान् प्रयोजन में अपनी असाधारण भूमिका प्रस्तुत करेगी ।

गायत्री महाशक्ति से नवयुग की संरचना

नवयुग के अनुरूप सुखद परिस्थितियाँ उत्पन्न करने के लिए तदनुरूप मनःस्थिति का उत्पन्न किया जाना आवश्यक है । कर्म अनायास ही नहीं हो जाते, उसका बीज–तत्व विचारों में रहता है । बीज अंकुर के रूप में प्रस्फुटित होता है, तब कहीं वृक्ष का अस्तित्व प्रकाश में आता है । उज्ज्वल भविष्य की संरचना का स्वरूप धरती पर स्वर्ग के अवतरण जैसा निर्धारित किया गया है । समाज में सत्प्रवृत्तियाँ चल पड़ने और पारस्परिक व्यवहार में शालीनता का समावेश होने पर ही यह सम्भव हो सकेगा । समृद्धि और कुछ नहीं सदुद्देश्य भरे पुरुषार्थ का ही प्रतिफल है । प्रगति का अर्थ अधिक उपार्जन ही नहीं उपलब्धियों का सदुपयोग करने की क्षमता भी है । धरती पर स्वर्ग के अवतरण का अभिप्राय ऐसी ही परिस्थितियाँ उत्पन्न करना है ।

स्पष्ट है कि भली या बुरी परिस्थितियाँ आसमान से नहीं टपकती, वे मानवी मनःस्थिति की प्रक्रिया भर होती हैं । सुखद परिस्थितियाँ, अनुकूल

साधन–सुविधायें उत्पन्न करनी हों तो चिन्तन और चरित्र को सृजनात्मक सत्प्रयोजनों में लगाने के अतिरिक्त और कोई उपाय है नहीं । व्यक्ति का अन्तराल निकृष्टता की कीचड़ में धँसा रहे तो उसकी विचारणा और क्रियाशक्ति के दोनों ही शक्तिस्रोत विनाश की विभीषिकाएँ रचते रहेंगे । उनकी दुखद प्रतिक्रिया चित्र–विचित्र समस्याओं और विपत्तियों के रूप में सामने आती रहेंगी । प्रगति के क्रम पर किए गये उपचार यत्किंचित उत्पादन भले ही कर लें, पर आंतरिक निकृष्टता के बने रहने पर न उलझनें सुलझेंगी और न संकट टलेंगे । अन्तःक्षेत्र में भरी हुई दुष्प्रवृत्तियों को साधनों का सहारा मिलने लगा तो वे साँप के दूध पीने पर बढ़ने वाले विष की तरह आत्मघात और परपीड़न के ही सरंजाम खड़े करेंगी ।

धरती पर स्वर्गीय परिस्थितियाँ उत्पन्न करने की, उज्ज्वल भविष्य के सपनों को साकार बनाने की प्रक्रिया प्रत्यक्षतः तो बढ़े हुए साधनों और प्रचलन में सुव्यवस्थाओं के रूप में दिखाई देगी, पर उसका आधार उथला नहीं गहरा होगा । परिपुष्ट शालीनता ही इतना कुछ कर सकने में समर्थ होगी, इसी को मनुष्य में देवत्व का उदय कहा गया है । नैतिक, बौद्धिक और सामाजिक दृष्टि से सुसंस्कृत व्यक्ति ही देवता कहे जाते हैं । उच्चस्तरीय संकल्प और चरित्र का समन्वय ही प्रतिभा है । प्रतिभा के सहारे प्रतिकूलताओं और अभावों के घिरे रहने पर भी व्यक्ति आगे बढ़ सकता है और महामानवों जैसा श्रेय पा सकता है । वह स्वयं आगे बढ़ता और सम्पर्क के वातावरण तथा समुदाय को भी ऊँचा उठाता है । युग निर्माण का लक्ष्य सुखद परिस्थितियाँ उत्पन्न करना है । उसकी पूर्ति मनुष्य में देवस्तर का व्यक्तित्व उत्पन्न करने से ही होगी । इसी बीज से उत्पन्न हुए अंकुर समयानुसार श्रेय संभावनाओं के रूप में हरे–भरे लहलहाते और फले–फूले दिखाई देंगे ।

तथ्यों को गम्भीरतापूर्वक समझने के उपरान्त इस निष्कर्ष पर पहुँचना होगा कि व्यक्तियों को परिष्कृत कैसे किया जाय ? इस सम्बन्ध में किये गये तत्व–चिन्तन से यही जाना जा सकेगा कि विचारणा और आस्थाओं के मर्मस्थल में घुस पड़ने वाली विकृतियों का निराकरण किया जाये, उनके स्थान पर सत्प्रवृत्तियों की स्थापना

की जाय । जनमानस का परिष्कार इसी को कहते हैं । धर्मतंत्र से लोक-शिक्षण का अभियान इसी आवश्यकता की पूर्ति के लिए चल रहा है । नये युग की संरचना के आधारभूत तथ्यों का केन्द्र-बिन्दु इन्हीं प्रयासों में सन्निहित है । महाकाल की सामयिक प्रेरणा जागृत-आत्माओं को इन्हीं गतिविधियों में संलग्न होने के लिए घसीटती-धकेलती दृष्टिगोचर हो रही है ।

प्रचार प्रशिक्षण को विचार-विस्तार का माध्यम माना जाता है । जहाँ तक नैतिक शिक्षण का सम्बन्ध है वहाँ तक उस आधार को उथला ही माना जायेगा । जानकारियाँ बढ़ाने और कला-कौशल सिखाने में सामान्य शिक्षण की व्यवस्था कर देने से काम चल जाता है, पर जहाँ तक चरित्र निर्माण और व्यक्तित्व के परिष्कार का सम्बन्ध है, वहाँ इस उपचार द्वारा कुछ कारगर परिणाम नहीं निकलते दीखते । नैतिकता और आदर्शवादिता की दुहाई देने वाले धर्मोपदेशक, समाज-सुधारक, राजनेता, साहित्यकार आदि मूर्धन्य वर्ग के लोगों को भी जब व्यक्तिगत व्यवहार में अनीतिरत देखते हैं तो आश्चर्य होता है कि जो लोग दूसरों को सदाचरण की शिक्षा इतने जोर-शोर से देते हैं, वे स्वयं अपने ही प्रतिपादन के सर्वथा प्रतिकूल आचरण कैसे कर रहे हैं ?

नीति और सदाचरण के सिद्धांतों का जहाँ तक प्रश्न है-इस सम्बन्ध में सर्वसाधारण को पर्याप्त जानकारी है । यहाँ तक कि प्रसंग आने पर अनाचारी भी सदाचरण का ही पक्ष-समर्थन करता है । ऐसी दशा में किंकर्तव्य विमूढ़ रह जाना पड़ता है कि प्रचार प्रशिक्षण द्वारा नीति-शिक्षा कैसे दी जाय ? जगे हुओं को कैसे जगाया जाय ? माने हुए को कैसे मनाया जाय ? प्रचार तंत्र का उद्देश्य तो जानकारी देना भर है । जिन्हें पहले से ही जानकारी प्राप्त है, उन्हें उन्हीं बातों पर बार-बार बताते चलने से पिसे को पीसने जैसी उपहासास्पद स्थिति ही बनी रहती है । अस्तु मात्र प्रचार तंत्र के सहारे मनुष्य में देवत्व उत्पन्न करने वाली आस्थाओं की प्रतिष्ठापना संभव न हो सकेगी । उस स्तर के प्रयासों से कुछ उत्साह भले ही उत्पन्न कर लिया जाय । नीतिमत्ता के पक्ष में वाणी और लेखनी से प्रचार-कृत्य पहले भी होता था और अब भी हो रहा है । परिणामों का पर्यवेक्षण करने से निराश ही होना पड़ता

है । इतने भर से कोई बड़ा प्रयोजन पूरा हो सकने की आशा बँधती नहीं है ।

आस्थाओं में निकृष्टता का घुस पड़ना ही वर्तमान युग की समस्त विपन्नताओं का एक मात्र कारण है । उसके निवारण का उपाय आस्थाओं के स्तर को परिष्कृत करने के अतिरिक्त अन्य कोई है नहीं । ब्रह्मविद्या का तत्वज्ञान, तपश्चर्या का आदर्शवादी कष्ट सहन, दोनों को मिला देने से वह आधार बनता है जो अन्तराल की गहराई तक प्रवेश कर सके । उस क्षेत्र में आवश्यक परिवर्तन–परिष्कार इसी माध्यम से सहज संभव हो सकता है । यों अपवाद तो ऐसे भी हैं कि बिना किसी अध्यात्म साधना के कितनों ने अपनी उच्चस्तरीय आस्थाएँ जगाईं और परिपक्व बनायीं । सर्वसुलभ–सर्वजनीन उपाय एक ही है कि जनमानस में उच्चस्तरीय आस्थाओं की स्थापना का व्यापक अभियान चलाया जाय । उसका आधार–कार्यक्रम उत्कृष्टता के तत्वज्ञान और तप–साधना के समन्वय से बनाया जाये । प्रस्तुत गायत्री आन्दोलन को इसी दृष्टि से देखा जा सकता है, उसका प्रारूप इन दोनों तथ्यों का समुचित समन्वय करके बनाया गया है । अपेक्षा की जानी चाहिए कि यदि तथ्य को सही रूप से समझा और अपनाया गया तो इसके दूरगामी परिणाम होंगे । मनुष्य में देवत्व का उदय और धरती पर स्वर्ग के अवतरण की साध सँजोये हुए प्रयासों की प्रगति और सफलता का आधार क्या हो सकता है ? क्यों हो सकता है ? इस तथ्य को यदि जनसाधारण द्वारा ठीक तरह समझा जा सके तो वह असमंजस दूर हो जायेगा जिसके कारण यह सन्देह उत्पन्न होता है । नवनिर्माण और गायत्री अभियान की परस्पर संगति बैठती भी है या नहीं ?

सोचा जा सकता है कि गायत्री जप के पूजा कृत्य की बात तो पुरानी है । उसे भजन–पूजन करने वालों में से बहुत जानते–मानते भी हैं, फिर नये अभियान के रूप में इतनी विशालकाय तैयारी नये सिरे से क्यों करनी पड़ रही है ? यहाँ यह समझना होगा कि प्रचलित परम्परा में मात्र गायत्री मन्त्र के जप का प्रचलन दैव अनुग्रह प्राप्त करने की दृष्टि से करने भर की मान्यता है । सांसारिक मनोकामनाओं की पूर्ति, संकटों की निवृत्ति, परलोक में स्वर्ग–मुक्ति के प्रति ऋद्धि–सिद्धियों की

चमत्कारिकता जैसे छोटे–बड़े वैयक्तिक लाभ ही उससे सोचे जाते हैं । भजन–पूजन के क्रिया–कृत्य प्रायः इन्हीं प्रयोजनों की पूर्ति के लिए किए जाते रहते हैं । सामान्य व्यक्ति इतना ही सोच सकता है और उसका 'प्रिय' इतनी छोटी परिधि तक ही केन्द्रित हो सकता है । इसलिए स्वार्थों की पूर्ति के लिए उतना आधार भी आकर्षक ही लगेगा । किन्तु स्मरण रखने योग्य यह भी है कि गायत्री महाशक्ति के विशाल कलेवर का यह एक बहुत छोटा अंश है, उसकी समग्रता वैयक्तिक स्वार्थ पूर्ति की तुच्छ परिधि में समेटी नहीं जा सकती । युग–शक्ति के रूप में गायत्री का परिचय जन–साधारण को कराना होगा और जो कुछ अविदित–अनभ्यस्त पड़ा है, उस अद्भुत को सर्वसाधारण की जानकारी में लाना होगा । यदि ऐसा सम्भव हो सके तो बुद्धिजीवियों से लेकर मूढ़मति लोगों तक को यह स्वीकार करने में यह कठिनाई न होगी कि नवयुग अवतरण की सामयिक आवश्यकता की पूर्ति में गायत्री का तत्वज्ञान और शक्तिसंधान किस प्रकार उपयोगी हो सकता है ।

नवयुग के अवतरण की इस प्रभातवेला में क्रान्तिकारी परिवर्तन के सरंजाम खड़े करने के लिए जिस शक्ति की आवश्यकता है उसे गायत्री के तत्वदर्शन, विधि–विधान और प्रयोग–उपचार द्वारा पाया जा सकता है । यह तथ्य जनमानस में पूरी तरह प्रतिष्ठापित कराया जाना चाहिए, स्थिति ऐसी उत्पन्न की जानी चाहिए कि केवल तथ्यों को स्वीकारा ही न जाये वरन् अपना सर्वोत्तम–सर्वतोमुखी हित साधन भी इस अवलम्बन को अपनाने में समझा जाय । इस स्थिति को उत्पन्न करना प्रस्तुत गायत्री अभियान का सामाजिक उद्देश्य है, उसे अपनाने से संकट टल सकेगा और उज्ज्वल भविष्य का आधार खड़ा हो सकेगा ।

युग परिवर्तन में चरित्र निष्ठा और समाज निष्ठा को उत्कृष्ट आदर्शवादिता की लोक–परम्परा, जन–मान्यता और सर्वजनीन रुचि–आकांक्षा का रूप देना होगा । इसके लिए एक सर्वतोमुखी संविधान की, आचार–शास्त्र की आवश्यकता पड़ेगी । यह ऐसा होना चाहिए कि तर्क और तथ्यों को हर कसौटी पर कसने से सही सिद्ध हो सके । यह ऐसा होना चाहिए जिस पर आप्त पुरुषों के, शास्त्रकारों के अनुभव, अभ्यास, प्रतिपादन की छाप हो, जिसे भूतकाल में प्रयोग–परायणों के

द्वारा सही पाया गया हो—ऐसा बीजमंत्र गायत्री के रूप में अनादिकाल से उपलब्ध है । उसे संसार का सबसे सारगर्भित धर्मशास्त्र कह सकते हैं, इसमें वैयक्तिक महानता और सामाजिक सद्भावना के सारे सूत्र—संकेतों का समावेश है । नये युग की वैयक्तिक और सामाजिक मर्यादाओं का निर्माण—निर्धारण करने की जब आवश्यकता पड़ेगी तब चिर प्राचीन और चिरनवीन का समन्वय तलाश किया जायेगा । अतीत की श्रद्धा और भविष्य की आशा का एकीकरण करते समय प्रखर वर्तमान की संरचना करनी होगी । यह कार्य गायत्री मंत्र के अक्षरों में सन्निहित सूत्र—संकेतों के सहारे जितनी अच्छी तरह सम्पन्न हो सकता है उतना और किसी प्रकार नहीं ।

मध्यकालीन अन्धेरगर्दी ने अराजकता उत्पन्न की और सनातन आचार संहिता को अस्त—व्यस्त करके रख दिया । व्यक्ति के चिंतन और चरित्र को सुसंस्कृत बनाये रखने के लिए ब्रह्मविद्या और धर्मशास्त्र की सुनियोजित परम्परा मानवी उत्कर्ष के आदिकाल में ही बनी थी और उसका प्रचलन स्वर्णिम अतीत का आधार बनाये रहा । इसी प्रकार समाज व्यवस्था के लिए नीतिशास्त्र और न्याय—अनुशासन का संविधान विद्यमान था । धर्मतंत्र व्यक्तित्वों को देवोपम बनाये रखने के लिए और राजतंत्र समाज व्यवस्था का सुनियोजन किए रहने के लिए अपनी—अपनी भूमिका निभाते थे और इसी संसार में सुख—शान्ति की स्वर्गीय परिस्थितियाँ दसों दिशाओं में बिखरी फिरती थीं । मध्यकाल का स्वेच्छाचार ही देव—दानव की तरह अतीत की गौरव—गरिमा को उदरस्थ कर गया है । उलटे को उलटने से ही सीधी स्थिति प्राप्त होती है । अनाचार को सदाचार में परिणत करने का महाप्रयास ही युग परिवर्तन है । इसके लिए उन प्राचीन आधारों को ढूँढ़ना होगा जो नवीन परिस्थितियों में भी सही और सार्थक सिद्ध हो सके । पतन के प्रवाह को उत्थान की दिशा में मोड़—मरोड़कर रख सके ।

आज साधनों की उतनी आवश्यकता नहीं है जितनी भावनाओं की । समय की आवश्यकता पूरी कर सकने वाली भावनात्मक सम्पदा का विपुल भण्डार गायत्री मंत्र के छोटे से कलेवर में विद्यमान देखा जा सकता है । उसमें वैयक्तिक गरिमा को बनाये रहने वाला भावनात्मक आधार मौजूद

है । इस आधार को प्राचीनकाल से वेद कहा जाता है । वेद की पुस्तकों में व्यक्तित्व में देवत्व भर देने वाला तत्वदर्शन है । वेद का मूल गायत्री है, इसलिए उसे वेदमाता–देवमाता कहा जाता है । इसे धर्म पक्ष की परिधि कह सकते हैं । दूसरा पक्ष है–समाज व्यवस्था, परम्परा एवं जन अनुशासन । इसकी पृष्ठभूमि भी गायत्री मन्त्र में उसकी व्याख्या परिभाषाओं में मौजूद है, इसी आधार पर उसे विश्वमाता कहा जाता है । विश्व की सुख–शान्ति और प्रगति–समृद्धि किस प्रकार अक्षुण्ण रह सकती है, आगे बढ़ सकती है, इसका आलोकदर्शन गायत्री मन्त्र में जितनी अच्छी तरह मौजूद है उतना अन्य किसी आधार पर अन्यत्र कहीं पाया जा सकना सम्भव नहीं है ।

भूतकाल में महामनीषियों द्वारा किए गये प्रयत्नों, प्रतिपादनों और अनुभवों का सूत्र–'संकेत गायत्री बीज–मन्त्र के अति संक्षिप्त कलेवर में स्तर रूप से विद्यमान है । उसी पुरातन का नवीन उपयोग इन दिनों विश्व के नवनिर्माण का महान् प्रयोजन पूरा करने के लिए करना होगा । गायत्री महाशक्ति के अवलम्बन से ही इतना बड़ा महान प्रयोजन पूरा हो सकता है । भारतीय संस्कृति की महानता का इतिहास उसकी साक्षी देता और पुष्टि करता है । भारतीय तत्वज्ञान के आधार वेद हैं और वेदों का बीज तत्व गायत्री मन्त्र है । इसी महामंत्र के चार चरणों से चार वेद बने हैं । उनकी व्याख्या में धर्म और अध्यात्म का विशालकाय कलेवर खड़ा किया गया ।

नवयुग के अवतरण की पुण्यवेला में गायत्री की ज्ञानगंगा को फिर से प्रवाहमान बनाने के लिए इन दिनों भागीरथ प्रयास चल रहे हैं । इन्हें अधिक मर्मज्ञ, व्यापक और सफल बनाने के लिए जागृत आत्माओं के पुरुषार्थ में अधिक प्रखरता उत्पन्न होनी चाहिए । युग परिवर्तन के महान कार्य में जिस आध्यात्मिक ऊर्जा का उत्पादन करना पड़ेगा, उसके लिए गायत्री में सन्निहित तत्वज्ञान और साधना–विज्ञान को अधिकाधिक जनमानस की गहराई तक पहुँचाने के लिए इन दिनों तत्परतापूर्वक प्रबल प्रयत्न किये जाने चाहिए, यही युग धर्म है । युग साधना के रूप में गायत्री ही अपने समय की आवश्यकता पूरी करेगी । युगशक्ति के रूप में उसका उदय प्रभातकालीन अरुणोदय के रूप में प्रत्यक्ष देखा जा सकता है ।

धरती पर युगान्तरीय चेतना के रूप में गायत्री महाशक्ति का अभिनव अवतरण होते हुए देखा तो चिरकाल से जा रहा है । जन मानस में परोक्ष प्रेरणा से उसके प्रति सहज आकर्षण बढ़ा है । गायत्री परिवार के प्रयत्नों को भी उसके लिए यत्किंचित श्रेय मिल सकता है किन्तु तथ्य यह है कि ज्ञानगंगा का अवतरण दैवी प्रेरणा से ही हो रहा है ।

मुद्रक : युग निर्माण योजना प्रेस, मथुरा